शंका नवि चित्त धरिए

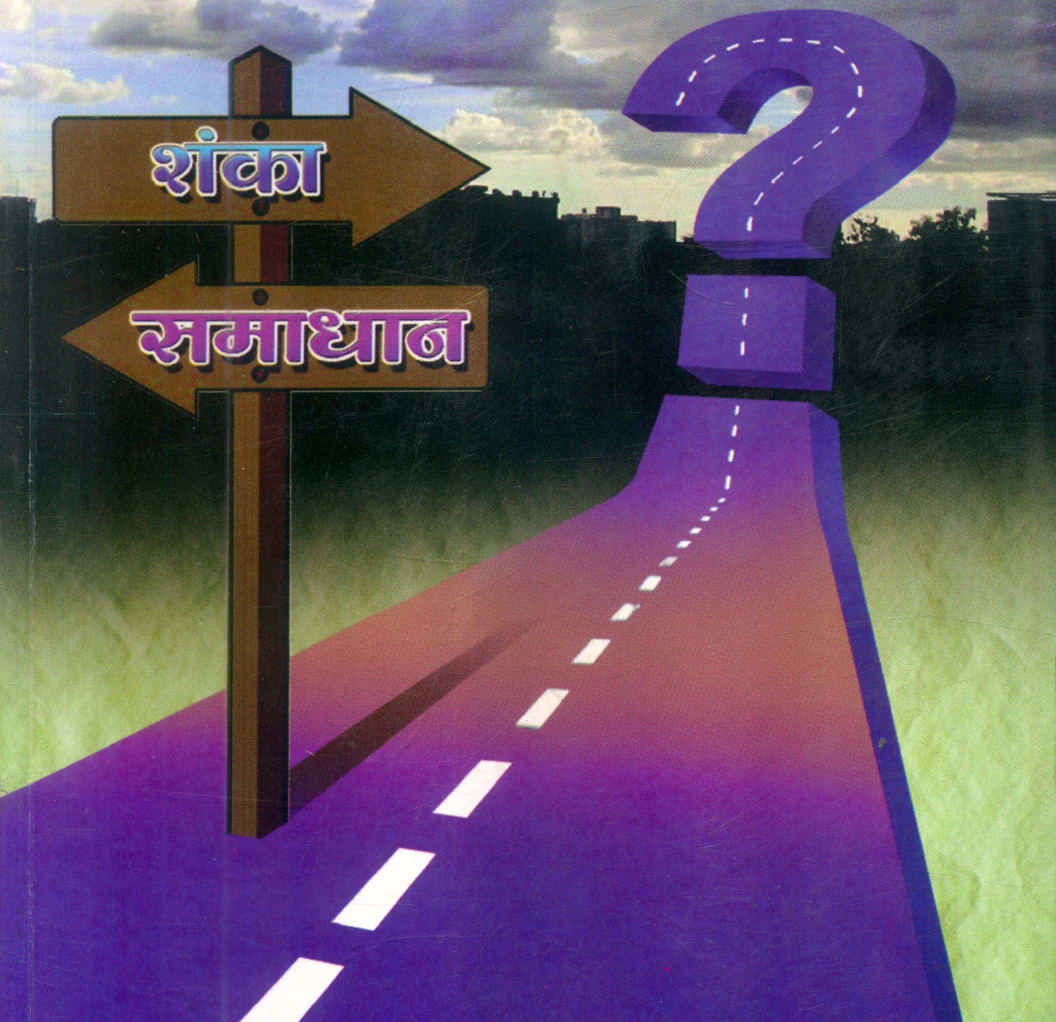

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

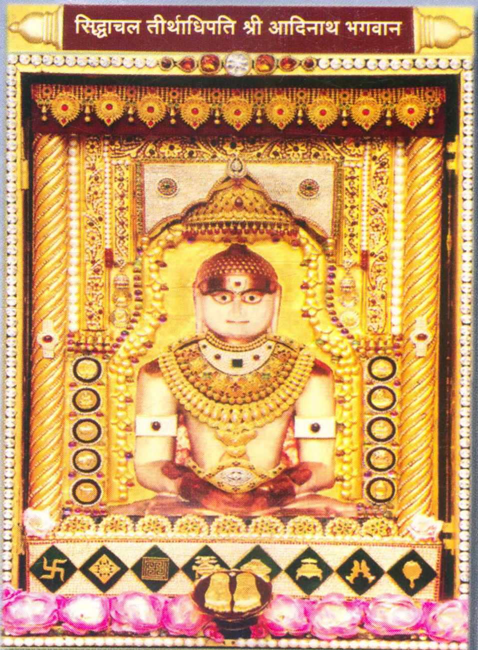

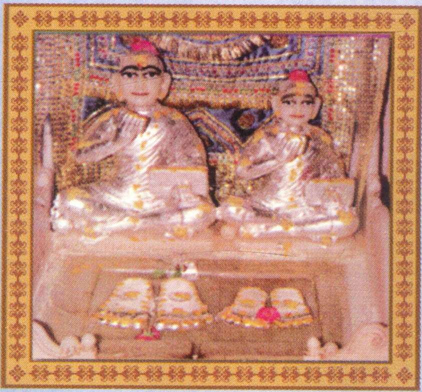

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

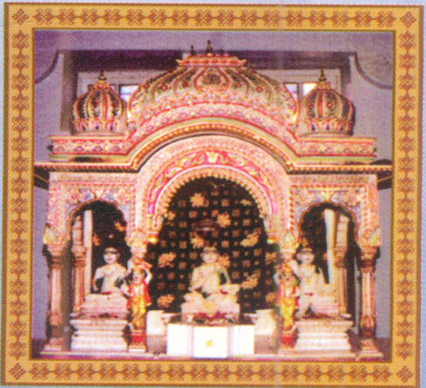

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

शंका नवि चित्त धरिये!

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-23

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

शंका नवि चित्त धरिये!

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-23

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

ACHARYA SR... GYANMANDIR
SRIMAHA... A
Koba, Ga... 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

शंका नवि चित्त धरिये!

कृपा वृष्टि : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मंगल वृष्टि : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

आनन्द वृष्टि : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.

प्रेरणा वृष्टि : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

वात्सल्य वृष्टि: गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.

स्नेह वृष्टि : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल

शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)

ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन

प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014

प्रतियाँ : 1000

सहयोग राशि : ₹ 50.00

(पुनः प्रकाशनार्थ)

कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी

कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता

मुद्रक : Antartica Press, Kolkata

ISBN : 978-81-910801-6-2 (XXIII)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला- दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

श्रद्धार्पण

महान साधिका तूँ सदियों की
ना कोई तेरा सानी।
चरम व्याधि के दीर्घ क्षणों में
छलकी तुझ में परम समाधि।।
स्मित हास्य की रेखा सदा
बिखरी रहती मुखमंडल पर।
जिनवाणी का मंथन सुमिरण
चलता रहता हृदय पटल पर।।
शब्द निर्झर का मधुर प्रवाह
राग-द्वेष मन के हरता।
मैत्री, प्रेम, सौहार्द्र की सरिता
अखिल जगत को प्रमुदित करता।।

ऐसी

सत्त्व एवं ममत्व की जीवंत अनुयोग
करुणा एवं निस्पृहता की धुरिम अभियोग
व्यवहार एवं निश्चय धर्म का सुरभित संयोग
परम पूज्या प्रवर्त्तिनी महोदया विचक्षण श्रीजी म.सा. के
विलक्षण जीवन गाथा को

सादर समर्पित...

सज्जन मनोगत

Net और E-mail की Fashion में

भौतिक ज्ञान के Attraction में

पाश्चात्य संस्कृति के impression में

जो निरर्थक मानते हैं...

सांस्कृतिक धरोहरों को

प्रतिमा और प्रासादों को

प्रतिष्ठा आदि आयोजनों को

ऐसे

मार्ग च्युत हुए आर्य समाज को

धर्म विमुख हुई युवा आवाज को

वितर्कवादी गर्म मिजाज को

आगमिक क्रियाओं का महत्त्व बताने

पाषाण में परमात्मा के जीवंत दर्शन करवाने

विधि-अविधि का मर्म समझाने हेतु

एक मार्मिक चिन्तन...

हार्दिक अनुमोदन

कोलकाता निवासी श्रावकवर्य्य

पिता श्री **मुकुन्दीलालजी – मातु श्री लक्ष्मीदेवी** की

उपकारक स्मृति में

सुपुत्र

समाज रत्न श्री कान्तिलालजी-रूबीजी

सुपौत्र

दीपक-चित्रा

प्रपौत्र

अभिषेक, हर्षवर्धन

मुकीम परिवार

ज्ञान ज्योति के हार्दिक सहभागी
श्री कान्तिलालजी मुकीम परिवार

बंगाल की भूमि कला, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं संगीत के लिए जितनी प्रसिद्ध है उतनी ही सुप्रसिद्ध है Bengal tigers के लिए भी। यहाँ की वाणी में जितनी मिठास है उतनी ही बुलंदी और गर्जना भी।

कोलकाता जैन समाज के ऐसे ही Bengal tiger हैं श्रेष्ठिवर्य्य श्री कान्तिलालजी मुकीम। परिचित जनवर्ग इन्हें नेताजी के नाम से भी सम्बोधित करता है।

कलकत्ता जैन समाज के विकास में मुकीम परिवार का विशिष्ट योगदान पूर्वकाल से ही रहा है। यहाँ का प्रसिद्ध राय बद्रीदास टेम्पल मुकीम परिवार की ही धरोहर हैं। आपका सम्बन्ध भी उसी मुकीम परिवार से है। सम्पूर्ण कलकत्ता जैन समाज में आप एक अग्रणी श्रावक के रूप में पहचाने जाते हैं।

आपकी दीर्घ दृष्टि, अनुभव प्रौढ़ता एवं आत्मिक दृढ़ता के बल पर कही गई बात लोह की लकीर के समान मान्य होती है। प्राय: आपका निर्णय अन्तिम निर्णय होता है।

संघरत्ना पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की प्रेरणा से आपके जीवन में धर्म का बीजारोपण हुआ। मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा भक्ति है। उनकी निश्रा में आप तीनों उपधान की आराधना कर चुके हैं। आप नियमित नवकारसी, सामायिक, रात्रिभोजन त्याग आदि नियमों का पालन करते हैं। आपका जीवन कई आत्म हितकारी नियमों से आबद्ध है। दोनों ही पूज्यवर्य्याओं को आप जीवन में अत्यन्त उपकारी मानते हैं।

आपके व्यक्तित्व को देखकर किसी शायर की पंक्तियाँ स्मरण में आती हैं–

ऐसे भी हैं लोग यहाँ, जिनसे खुद बना जमाना है।
दुनिया ने जिनके नामों से, उस युग को पहचाना है।
जो खुद ही अपना परिचय हो, उनका परिचय क्या देना।
उनका परिचय देना, सूरज को दीप दिखाना है।।

आपका नाम खुद ही अपना परिचय है। आप किसी अन्य परिचय के मोहताज नहीं है। अनेक वर्षों से आप शीतलनाथ भवन के अध्यक्ष पद पर हैं। इसी प्रकार आप पंचायती मन्दिर, जिनरंगसूरि पौशाल आदि में ट्रस्टी पद पर रह चुके हैं और आज भी सजगता पूर्वक इन पदों का निर्वाह कर रहे हैं।

आप एक प्रखर वक्ता एवं समाज के जागरूक श्रावक हैं। आने वाले सभी साधु-साध्वियों का पिता तुल्य ध्यान रखते हैं। आवश्यकता अनुसार सम्यक सुझाव एवं दिशा निर्देश भी देते हैं। आज के समाज में आप जैसे श्रावकों की अल्पता है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रूबी देवी मुकीम अत्यन्त सरल स्वभावी एवं मिलनसार है। वे नि:स्वार्थ भाव से आपके प्रत्येक धर्म कार्य में सहयोगी बनती है।

आपके सुपुत्र दीपकजी आप ही के नक्शे कदम पर चलते हुए समाज सेवा हेतु उद्यत रहते हैं तथा अपने नाम के अनुसार आपकी कान्ति को दीप्त करने वाले हैं। आपकी पुत्रवधू चित्राजी भी आपकी गरिमा को उन्नत करने में तत्पर रहती हैं।

साध्वी सौम्याजी के कलकत्ता प्रवास के दौरान उनके शोध कार्य के प्रति आप पूर्ण सचेत रहे। विश्वविद्यालय में शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के पश्चात पुस्तक प्रकाशन की जिम्मेदारी भी आपने संभाली। आप ही के अमिट स्नेह एवं सहयोग से आज यह उपलब्धि संभव हो पाई है।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन यही शुभाशंसा करता है कि आप शतायु हो एवं इसी तरह शासन हित के कार्यों में संलग्न रहकर जिन शासन ज्योति को देदीप्यमान रखें।

●

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति को मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सोलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सोलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रूद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सोलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व में

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती।

कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपोदित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर

1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।
साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य

का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मेरे प्रभुजी की पूजा आनंद मिले...

'भत्तिए जिणवराणां खिज्जंति पुव्वसंचिया कम्मं'–

चौदह पूर्वों के ज्ञाता श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी कहते हैं कि प्रभु भक्ति पूर्व संचित कर्मों का विनाश करती है। अनादि संचित कर्मयोग को तोड़ने में परमात्म भक्ति ही पूर्ण सामर्थ्यवती है। मोक्ष द्वार को खोलने की कुंजी है। इसीलिए आनंदघनजी महाराज कहते हैं–

''पूजा-पूजो रे भविक जन पूजो, प्रभु पूज्या परमानंद, जिनवर पूजो रे...'' इसी का समर्थन करते हुए उपाध्याय साधुकीर्तिजी सत्रहभेदी पूजा में कहते हैं– **'मेरे प्रभुजी की पूजा आनंद मिले।'**

परम वीतरागी अरिहंत परमात्मा की पूजा-भक्ति से ऐसे अनहद आनंद की प्राप्ति होती है जिसकी कोई सीमा नहीं, कोई तुलना नहीं, जिसके लिए कोई उपमा नहीं और जिसका कोई अंत नहीं।

मंदिर-स्थानक, पूजा-उपासना आदि हमारी दिव्य आध्यात्मिक संस्कृति के परिचायक हैं। परन्तु आधुनिक भोगवादी संस्कृति ने युवा वर्ग के मन में इन सबके प्रति अनेक प्रश्न उपस्थित कर दिए हैं। आज के वैज्ञानिक युग में अधिकांश लोग मन्दिर, प्रतिमा, पूजा-पाठ आदि के विषय में नकारात्मक सोच रखते हैं। कई लोग विधि-विधानों की बहुलता तो कई लोग अपनी व्यस्तता के कारण धर्म-कर्म से दूर रहना ही पसंद करते हैं। एक वर्ग ऐसा भी है जो क्रियाओं का हार्द, रहस्य एवं ध्येय जाने और समझे बिना तोता रटन की भाँति उन्हें किए जा रहा है। तो कुछ लोग मात्र परम्परा अनुकरण या संस्कृति के निर्वाह के लिए इन्हें करते हैं। किन्तु सभी के मन में भिन्न-भिन्न विषयों को लेकर अनेक शंकाएँ हैं। यद्यपि इनका समाधान जैनाचार्य समय-समय पर करते रहे हैं, तदुपरांत वर्तमान में बढ़ती तार्किक बुद्धि, धर्म क्रियाओं के प्रति अरुचि एवं उपेक्षा भाव, मन्दिरों में बढ़ती आशातना तथा रूढ़ धारणाओं के प्रति लोगों की हठाग्रह बुद्धि के कारण जिनधर्म अनुयायियों को उचित मार्गदर्शन नहीं मिलता और चाहे-अनचाहे उन्हें अविधि का अनुसरण करना पड़ता है।

अतुल परिश्रमी विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी ने अपने विराट शोध-कार्य के दौरान विधि विषयक ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए वर्तमान पीढ़ी की शंकाओं

का शास्त्रीय समाधान वर्तमान परिस्थिति एवं भिन्न-भिन्न परम्पराओं की मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में साध्वीजी ने जिनमन्दिर सम्बन्धी समग्र विषयों पर प्रासंगिक शंका-समाधान प्रस्तुत किए हैं।

इसके माध्यम से जिज्ञासु वर्ग को शास्त्रोक्त विधि एवं रहस्यों का ज्ञान होगा, वितर्कवादी लोगों को सम्यक तर्क की प्राप्ति होगी। मन्दिरों में बढ़ती अव्यवस्था, आशातना एवं पुजारियों पर निर्भरता के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट होगा तथा भक्ति मार्ग पर मीरा की भाँति निःशंक गमन होगा। इसी भावना के साथ साध्वी सौम्यगुणा श्री को इस जन उपयोगी सम्यक प्रयास के लिए अन्तर्मन से बहुत-बहुत साधुवाद देती हूँ। वे इसी तरह लोक कल्याण की हृदयगत भावनाओं एवं जिज्ञासाओं का समाधान करने में प्रपावत बनें, ऐसी मंगलकामना।

शासन सेविका
आर्य्या शशि प्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.
एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदुःखकातरता आदि गुण तो आप में जन्मतः परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्ततः 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क,

अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्‌भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकशः वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो निःसन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णतः सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे ।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो ।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के अमिट पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अतः सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अतः पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुनः कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुनः कलकत्ता नगरी

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले- "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुनः गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अतः कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुन: कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें ।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें ।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है ।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है ।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी

म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर– शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी

के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक अभिवन्दना

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रातःकालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रात:कालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्शे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

जिन पडिमा जिन सारखी जाणो

भक्ति योग साधना का मुख्य अंग और शक्ति संचार का मुख्य स्त्रोत भी है। गीतार्थ आचार्यों के अनुसार इस पंचम काल में भक्ति ही मुक्ति का परम आधार बनती है, बशर्ते वह भक्ति उत्कृष्ट श्रद्धा भावों से युक्त हो। भक्त के मन में रही हुई बिन्दु रूप शंका भी भविष्य में विशाल सिंधु बनकर मुक्ति में बाधा उपस्थित करती है। शंका का सम्यक समाधान प्राप्त न होने पर सर्वस्व न्यौछावर एवं पूर्ण समर्पण की भावना भक्त मन में प्रस्फुटित हो ही नहीं सकती। इसी आशय से शंका-समाधान का प्रचलन आगम युग से रहा है। आगमों में 'पृच्छना' को स्वाध्याय का एक प्रकार माना है। विस्मय, जिज्ञासा, यथार्थ ज्ञान, आचार-विचार आदि में शुद्धता की अपेक्षा से पूछे गए प्रश्न एवं उनका सम्यक समाधान भव्य जीवों के लिए विविध प्रकारेण उपयोगी बनता है।

श्री भगवतीसूत्र में गौतम स्वामी द्वारा पूछे गए 36,000 प्रश्नों का (शंका-समाधान) सुंदर संकलन आज भी धर्म जिज्ञासुओं एवं शोध कर्त्ताओं के लिए lifeTime Offer के समान है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन युग में भी ऐसे ही कई प्रश्नोत्तरों का संकलन समय-समय पर प्रस्तुत होता रहा है। वर्तमान के अनेक विश्रुत आचार्यों एवं मुनि भगवंतों ने भी अपनी प्रज्ञा के आधार पर सन्मार्ग प्रदर्शित करने का सार्थक प्रयास किया है।

जिनमंदिर, प्रतिमा पूजन, मंदिर व्यवस्था, विधि-अविधि, पूजन-महापूजन, मंदिरों में देवी-देवताओं के स्थान आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनके संदर्भ में विविध प्रकार के प्रश्न एवं तर्क रूचिवन्त श्रावक वर्ग के द्वारा किए जाते हैं। परम्परा भेद, विचार भेद, मान्यता भेद आदि के कारण कई भिन्नताएँ विभिन्न जैन शाखाओं में ही देखी जाती है। जीव दया राशि का व्यय, देवद्रव्य एवं निर्माल्य द्रव्य का उपयोग, जिनपूजा में हिंसा है या नहीं? वर्तमान की पूजा-प्रतिष्ठा आदि में बढ़ते आडंबर एवं मंदिरों में आधुनिक यांत्रिक साधनों का प्रयोग कहाँ तक औचित्यपूर्ण है? देवी-देवताओं का पूजन करना चाहिए या

नहीं? वर्तमान में गृह मंदिर का निर्माण कितना उपयोगी है? आदि अनेक ऐसी शंकाएँ एवं समस्याएँ हैं जिन विषयों पर वर्तमान जीवन शैली आदि को ध्यान में रखते हुए शास्त्रीय मंथन करना आवश्यक प्रतीत हो रहा था।

श्रावक वर्ग एवं पाठक वर्ग की शंकाओं के विषय में आगम पाठों, प्राचीन उद्धरणों, अर्वाचीन कृतियों तथा विभिन्न बहुश्रुत आचार्यों द्वारा जो समाधान प्राप्त हुए उसी को आधार बनाकर सम्यक समाधान देने का प्रयास किया है ताकि श्रावक वर्ग के मन में यह बात स्थापित हो जाए कि

'जिन पडिमा जिन सारखी रे, न करो शंका कांई'

इस समाधान यात्रा की प्रकाशन वेला पर मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, पूज्य आचार्य श्री कीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा, पूज्य आचार्य राष्ट्रसंत श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा., पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. एवं ऋजु स्वभावी मुनि श्री पीयूष सागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने अपना बहुमूल्य मन्तव्य एवं मार्गदर्शन देकर इस कृति को जन उपयोगी बनाने में सहयोग दिया।

इन आत्मीय प्रयासों के बावजूद भी यदि अज्ञानतावश शास्त्रोक्त वचनों को सम्यक रूप से न समझने के कारण कोई भी त्रुटि रही हो या जिन वाणी के विरुद्ध कुछ भी जाने-अनजाने में लिखा हो, उत्सूत्र प्ररूपणा की हो तो सुज्ञजन इससे अवश्य ज्ञात करवाएँ। जिनवाणी रूप श्रुतमाता से भी मैं इसके लिए अंत:करण पूर्वक क्षमायाचना करती हूँ।

अंत में यही अभ्यर्थना है कि यह कृति शंकाओं के समाधान में, जिज्ञासुओं के शास्त्रामृत पान में, भव्य जनों के उत्थान में, विधि-अविधि के यर्थाथ ज्ञान में और विभ्रान्त मान्यताओं के खण्डन में सहयोगी बने!

प्र. सज्जन चरण रज
साध्वी सौम्यगुणा श्री

कृतज्ञता ज्ञापन

जगनाथ जगदानंद जगगुरू, अरिहंत प्रभु जग हितकरं
दिया दिव्य अनुभव ज्ञान सुखकर, मारग अहिंसा श्रेष्ठतम्
तुम नाम सुमिरण शान्तिदायक, विघ्न सर्व विनाशकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।1।।

संताप हर्ता शान्ति कर्ता, सिद्धचक्र वन्दन सुखकरं
लब्धिवंत गौतम ध्यान से, विनय हो वृद्धिकरं
दत्त-कुशल मणि-चन्द्र गुरुवर, सर्व वांछित पूरकम्
हो वंदना नित वन्दना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।2।।

जन जागृति दिव्य दूत है, सूरिपद वलि शोभितम्
सद्ज्ञान मार्ग प्रशस्त कर, दिया शास्त्र चिन्तन हितकरं
कैलाश सूरिवर गच्छनायक, सद्बोधबुद्धि दायकम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।3।।

श्रुत साधना की सफलता में, जो कुछ किया निस्वार्थतम्
आशीष वृष्टि स्नेह दृष्टि, दी प्रेरणा नित भव्यतम्
सूरि 'पद्म' 'कीर्ति' 'राजयश' का, उपकार मुझ पर अगणितम्।
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।4।।

ज्योतिष विशारद युग प्रभाकर, उपाध्याय मणिप्रभ गुरुवरं
समाधान दे संशय हरे, मुझ शोध मार्ग दिवाकरम्
सद्भाव जल से मुनि पीयूष ने, किया उत्साह वर्धनम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।5।।

उल्लास ऊर्जा नित बढ़ाते, आत्मीय 'प्रशांत' गणिवरं
दे प्रबोध मुझको दूर से, भ्राता 'विमल' मंगलकरं
विधि ग्रन्थों से अवगत किया, यशधारी 'रत्न' मुनिवरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम्।।6।।

हाथ जिनका थामकर, किया संयम मार्ग आरोहणम्
अनुसरण कर पाऊं उनका, है यही मन वांछितम्
सज्जन कृपा से होत है, दुःसाध्य कार्य शीघ्रतम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।7।।

कल्पतरू सा सुख मिले, शरणागति सौख्यकरम्
तप-ज्ञान रूचि के जागरण में, आधार हैं जिनका परम्
मुझ जीवन शिल्पी-दृढ़ संकल्पी, गुरू 'शशि' शीतल गुणकरम्
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।8।।

'प्रियदर्शना' सत्प्रेरणा से, किया शोध कार्य शतगुणम्
गुरु भगिनी मंडल सहाय से, कार्य सिद्धि शीघ्रतम्
उपकार सुमिरण उन सभी का, धरी भावना वृद्धिकरं
हो वंदना नित वंदना, कृपा सिन्धु कार्य सिद्धिकरम् ।।9।।

जिन स्थानों से प्रणयन किया, यह शोध कार्य मुख्यतम्
पार्श्वनाथ विद्यापीठ (शाजापुर, बनारस) की, मिली छत्रछाया सुखकरम्
जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) है, पूर्णाहुति साक्ष्य जयकरं
हो वन्दना नित वन्दना, है नगर कार्य सिद्धिकरम् ।।10।।

साधु नहीं पर साधकों के, आदर्श मूर्ति उच्चतम्
श्रुत ज्ञानसागर संशय निवारक, आचरण सम्प्रेरकम्
इस कृति के उद्धार में, निर्देश जिनका मुख्यतम्
शासन प्रभावक सागरमलजी, किं करुं गुण गौरवम् ।।11।।

अबोध हूँ, अल्पज्ञ हूँ, छद्मस्थ हूँ कर्म आवृतम्
अनुमोदना करुं उन सभी की, त्रिविध योगे अर्पितम्
जिन वाणी विपरीत हो लिखा, तो क्षमा हो मुझ दुष्कृतम्
श्रुत सिन्धु में अर्पित करुं, शोध मन्थन नवनीतम् ।।12।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

अध्याय-1 : सामूहिक आराधना क्यों की जाए? 1-3

अध्याय-2 : जिन प्रतिमा पूजनीय क्यों? 3-19

अध्याय-3 : करिए जिनदर्शन से निजदर्शन 20-35

अध्याय-4 : द्रव्य पूजा में हिंसा का प्राधान्य या अहिंसा का? 36-49

अध्याय-5 : वर्तमान में गृह मन्दिरों का औचित्य कितना? 50-58

अध्याय-6 : ऐसे करें जिनमन्दिर व्यवस्था 59-64

अध्याय-7 : पूजन-महापूजन प्राचीन या अर्वाचीन? 65-67

अध्याय-8 : कैसे बचें विराधना से? 68-84

अध्याय-9 : अंजनशलाका प्रतिष्ठा में बढ़ते आयोजन कितने प्रासंगिक? 85-87

अध्याय-10 : जीव दया की राशी का उपयोग कब और कैसे? 88-89

अध्याय-11 : देवी-देवताओं की उपासना के मुख्य घटक 90-96

सहायक ग्रन्थ सूची 97-98

●

अध्याय-1

सामूहिक आराधना क्यों की जाए?

शंका– चैत्यवंदन विधि का प्रारम्भ कब हुआ?

समाधान– जिनशासन की स्थापना होने के पश्चात गणधर चौदह पूर्व एवं द्वादशांगी की रचना करते हैं। इसी के अन्तर्गत आवश्यक सूत्र की भी रचना होती है। चैत्यवंदन विधि का समावेश आवश्यक सूत्र में ही हो जाता है अत: शासन स्थापना के दिन से ही चैत्यवंदन विधि प्रारम्भ हो जाती है। शक्रस्तव (णमुत्थुणं) चैत्यवंदन का मुख्य सूत्र है। इसे शाश्वत सूत्र भी माना जाता है। इस दृष्टि से चैत्यवंदन को एक शाश्वत विधि भी कह सकते हैं।

शंका– चैत्यवंदन से पूर्व साथिया क्यों बनाते हैं?

समाधान– साथिया, यह अक्षत पूजा के रूप में परमात्मा की द्रव्य पूजा है। प्राचीन काल में तो परमात्मा के समक्ष अष्टमंगल का आलेखन किया जाता था, परंतु वर्तमान में यह विधान स्वस्तिक या नंद्यावर्त्त आलेखन तक ही सीमित रह गया है। भाव पूजा रूप चैत्यवंदन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। द्रव्य पूजा भाव पूजा से पूर्व की जाती है अत: साथिया चैत्यवंदन से पूर्व बनाया जाता है।

शंका– घर मंदिर में परमात्मा का अवग्रह कितना होना चाहिए?

समाधान– श्राद्धविधि प्रकरण के अनुसार "**गृहचैत्यादौ तु हस्त-हस्तार्द्धमानात्**" गृह चैत्य में एक हाथ या आधे हाथ का अवग्रह रखना चाहिए। गृह मंदिर छोटे होने से संघ मंदिर के समान अवग्रह रखना कठिन है।

शंका– दर्शन करते समय श्रावक-श्राविका कहाँ खड़े रहें?

समाधान– पुरुषों को परमात्मा के दाहिनी तरफ तथा महिलाओं को बायीं तरफ खड़े रहने का विधान है। प्रभु के दर्शन करते समय जघन्य से नौ हाथ, उत्कृष्ट से साठ हाथ और मध्यम से नौ से साठ हाथ तक दूर खड़े रहना चाहिए।

शंका– रात्रि में तिलक लगा रहे तो क्या दोष है?

समाधान– पूर्व काल में शुद्ध कस्तूरी, केशर आदि द्रव्यों से चंदन रस

तैयार किया जाता था। उसकी तीव्र सुगंध से आकृष्ट होकर रात्रि में सर्पादि विषैले जन्तुओं का उपद्रव या कोई अमंगल न हो इस हेतु तिलक मिटाने का विधान था। वर्तमान में प्रयुक्त द्रव्य में वह प्राकृतिक शुद्धता एवं उत्कृष्टता नहींवत है अत: तिलक लगा भी रहे तो कोई दोष नहीं है।

शंका– श्रावक परमात्मा के सामने तिलक लगा सकता है?

समाधान– तिलक यह बहुमान का प्रतीक है। श्रावक तिलक लगाकर जिनाज्ञा को धारण करते हैं तथा श्रावकत्व का बहुमान करते हैं। यह लोक व्यवहार एवं विनय गुण की मर्यादा है कि बड़ों के सामने छोटों को अपना बहुमान नहीं करना चाहिए। परमात्मा का स्थान गृहस्थ श्रावक से बहुत ऊँचा है अत: परमात्मा के आगे पर्दा करके ही तिलक लगाना चाहिए।

शंका– प्रतिदिन परमात्मा की आंगी करनी चाहिए?

समाधान– आंगी-आभूषण आदि चढ़ाकर तीर्थंकर परमात्मा की राज्य अवस्था प्रदर्शित की जाती है। चैत्यवंदन करते समय अवस्था त्रिक का चिंतन करते हुए पिण्डस्थ अवस्था के अन्तर्गत राज्यावस्था का भी ध्यान किया जाता है। अंग रचना उसी का एक स्वरूप है। अत: उस स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए आंगी करनी चाहिए। परंतु वर्तमान में आंगी का बढ़ता प्रचलन अवश्य चिंतनीय है। अधिकतर मंदिरों में मात्र प्रक्षाल के समय ही आंगी उतारी जाती है। इससे परमात्मा के मूल वीतराग स्वरूप के तो दर्शन ही नहीं हो पाते, अत: पर्व दिनों में परमात्मा की विशेष अंग रचना एवं सामान्य दिनों में भी संध्या के समय अंग रचना करनी चाहिए।

शंका– एक लोगस्स के स्थान पर चार नवकार गिनने से श्वासोश्वास का प्रमाण अधिक हो जाता है?

समाधान– श्वासोश्वास परिमाण का कायोत्सर्ग करते हुए लोगस्स सूत्र को 'चंदेसु निम्मलयरा' या 'सागर वर गंभीरा'... तक बोलने का शास्त्रोक्त विधान है पर नवकार मंत्र अधूरा गिनने की समाचारी नहीं है। तीन नवकार गिनने पर परिमाण पूर्ण नहीं होता अत: एक लोगस्स के स्थान पर चार नवकार गिने जाते हैं। यह शास्त्रोक्त मान्यता होने से इसमें कोई दोष भी नहीं है। परिमाण अधिक होने पर दोष युक्त श्वोसोच्छवास की गणना नहीं की जाती।

शंका– सामूहिक आराधना क्यों की जाए?

समाधान– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समुदाय में रहना उसका स्वभाव एवं आवश्यकता है। सामूहिक स्तर पर की गई क्रियाएँ उसे विशेष रूप से प्रभावित करते हुए जीवन विकास हेतु प्रोत्साहित करती है। इसी हेतु को ध्यान में रखते हुए जैनाचार्यों ने सामूहिक आराधना करने का विधान किया है।

सामूहिक अनुष्ठान में सामान्य वर्ग सरलता से एवं अधिक संख्या में जुड़ता है। जिनके मन में क्रिया के प्रति रुचि या आकर्षण न हो उन्हें जोड़ने का भी यह श्रेष्ठ उपाय है। नूतन आराधकों के लिए सीखने का अपूर्व अभियान है वहीं कमजोर मन वाले लोगों के लिए आगे बढ़ने का सौपान है। इसी के साथ आपसी प्रेम एवं सौहार्द में वृद्धि होती है तथा भावोल्लास भी बना रहता है।

●

अध्याय-2

जिन प्रतिमा पूजनीय क्यों?

शंका– जिन प्रतिमा का निर्माण करवाने से क्या लाभ?

समाधान– जैन शास्त्रों में प्रतिमा बनवाने के लाभ की चर्चा अनेक स्थानों पर की गई है। प्रतिष्ठा कल्प के अनुसार

दारिद्दं दोहग्गं कुजाइ,कुसरीर-कुगइ-कुमइओ।
अवमाण-रोग-सोगा, न हुंति जिण बिंब कारिणं।।

जिन बिम्ब बनाने वाले को 1 दरिद्रता, 2 दौर्भाग्य, 3 नीच जाति, 4 कुशरीर, 5 कुगति, 6 कुमति, 7 अपमान, 8 रोग और 9 शोक जैसे दु:खों की प्राप्ति नहीं होती।

हितोपदेश ग्रंथ में कहा गया है कि–

''अइदुल्लहं पि बोहि, जिणपडिमाकारिणो लहु लहंति।''

अत्यन्त दुर्लभ ऐसे सम्यगदर्शन की प्राप्ति जिनप्रतिमा बनवाने एवं भरवाने से अति शीघ्र होती है।

श्रुत, संघ, तीर्थ आदि पूजनीय द्रव्य भी तीर्थंकरों द्वारा ही निर्मित है अत: तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा भरवाने वाले को इन सब की सेवा-भक्ति का लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

श्राद्धविधि प्रकरण के अनुसार जिनबिम्ब भरवाने वाले को मनुष्य लोक एवं देव लोक में परम सुख की प्राप्ति होती है। इसी के साथ उस जिन बिम्ब के दर्शन से जितने लोगों का सम्यगदर्शन पुष्ट होता है या जिनकी शुभ परिणति बनती है, उन सभी का आंशिक लाभ प्राप्त होता है।

शंका– वीतराग रूप में स्थापित गणधर प्रतिमा के निकट अन्य गुरु रूप में मान्य गणधर प्रतिमा एवं उनके चरण रख सकते है या नहीं?

समाधान– जिनरूप में स्थापित गणधर प्रतिमा चरण के साथ रह सकती है, परंतु गुरु रूप में विराजित गणधर प्रतिमा के साथ नहीं, क्योंकि दोनों में

केवली अवस्था और छद्मस्थ अवस्था का स्तर भेद है।

शंका– धर्मचक्र के आस-पास में स्थित हिरण युगल किसके सूचक हैं?

समाधान– संगीत श्रवण में हिरण की तन्मयता जग प्रसिद्ध है। जो आसक्ति और स्थिरता संगीत श्रवण में हिरण की होती है, वैसी ही स्थिति जिनवाणी श्रवण के समय हमारी बने। मृग जिस चपलता से दुश्मन को देखकर भागता है, हम भी राग-द्वेष रूपी शत्रुओं के उपस्थित होने पर वहाँ से चलायमान हो जाएं एवं जिनेश्वर परमात्मा की शरण ग्रहण करें इसी हेतु से जैनाचार्यों ने यह धर्मचक्र के आस-पास हिरण युगल का चिह्न बनाया है।

शंका– विश्व दर्शन में स्थापना निक्षेप का क्या महत्त्व है?

समाधान– जैन धर्म में सभी क्रियाएँ साक्षी पूर्वक करने का विधान है। विशेषावश्यक भाष्य में कहा गया है–

गुरु विरहंमि ठवणा, गुरुवएसो वंदणसणत्थं च।
जिणविरहंमि जिणबिम्ब, सेवणामंतणं सहलं च।।

परमात्मा एवं गुरु की अनुपस्थिति में उनकी स्थापना को ही उनके समान मानकर प्रत्येक क्रिया करनी चाहिए। अनुयोगद्वार में दस प्रकार के स्थापना की चर्चा की गई है। जितने भी सूत्र-सिद्धान्त हैं वे सभी जिनेश्वर परमात्मा के ज्ञान की अंश रूप स्थापना है। यदि स्थापना को निरर्थक माने तो जिनप्रतिमा, जिनागम आदि सभी निरर्थक हो जाएंगे जबकि देव मूर्ति एवं गुरु मूर्ति की स्थापना करने का ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय विधान है। आकार या निराकार किसी न किसी रूप में अपने आराध्य या Role Model की कल्पना सभी के मस्तिष्क पटल में होती है, उसके बिना जीवन में आगे बढ़ना या किसी भी क्रिया को करना नामुमकिन है। जो लोग स्थापना का विरोध करते हैं वे भी किसी न किसी रूप में उसी को आधार बनाकर अपनी आराधना करते हैं। जैसे कि मुसलमान स्थापना को नहीं मानते पर नमाज पढ़ते समय वे अपने मुँह को मक्का के सामने ही रखते हैं। जो आस्था हमारी मूर्ति के लिए है वही आस्था उनकी मस्जिद के प्रति होती है। बस वह मूर्ति में सीमित न रहकर मस्जिद में विस्तृत हो गई है। अत: किसी न किसी रूप में स्थापना का महत्त्व हर जगह स्वीकार्य है।

शंका– जिन प्रतिमा को नमस्कार करने से तो मूर्ति को नमस्कार होता है, भगवान को नहीं, क्योंकि भगवान तो मूर्ति से भिन्न हैं?

समाधान– जिन प्रतिमा को वंदन-नमस्कार करते समय जिनेश्वर भगवान को ही नमस्कार किया जाता है इसलिए दोनों भिन्न नहीं है। भावों से जिसे नमस्कार किया जाता है उसी को वंदन किया हुआ माना जाता है। जैसे कि जब हम महाविदेह में विराजित सीमंधर स्वामी को वंदन करते हैं तो उन्हीं को वंदन होता है, रास्ते में आने वाले पेड़-पौधें, घर, पर्वत आदि को नहीं। जब हम किसी साधु को नमस्कार करते हैं तो उनके शरीर को नहीं, उनके जीवन को वंदन करते हैं। यदि शरीर को वंदन किया जाए तो दीक्षा से पहले वंदन क्यों नहीं किया जाता? यदि कोई यह कहे कि यह शरीर रूपी पुद्‌गल द्रव्य साधु का ही है तो फिर मूर्ति भी वीतराग परमात्मा की ही है। अत: जिस प्रकार मुनि की काया को वंदन करने से मुनि को वंदन होता है वैसे ही वीतराग परमात्मा की मूर्ति को वंदन करने से साक्षात वीतराग परमात्मा को ही वंदन होता है।

शंका– निराकार भगवान की उपासना ध्यान द्वारा हो सकती है तो फिर मूर्ति मानने का क्या कारण?

समाधान– मनुष्य के मन की यह ताकत नहीं कि वह निराकार भगवान की उपासना कर सके। इन्द्रियों से ग्राह्य वस्तु अथवा देखी और सुनी हुई वस्तुओं का ही मनुष्य विचार कर सकता है। उसके अतिरिक्त वस्तुओं की कल्पना उसके मन में नहीं आ सकती। जैसे कि जिसने लता मंगेश्कर का मात्र नाम सुना हो पर उसके बारे में न जानता हो और न ही उसे कभी देखा हो वह उसकी कल्पना कैसे कर सकता है। उसी प्रकार जिसने साक्षात या प्रत्यक्ष रूप से जिनबिम्ब को देखा ही नहीं है वह परमात्मा का ध्यान कैसे कर सकता है?

निराकारी सिद्धों का ध्यान करते हुए भी लाल रंग के ज्योति की कल्पना ध्यान में आलंबन के हेतु से ही की जाती है। अतिशय ज्ञानियों के अतिरिक्त कोई भी सिद्धों के निराकार स्वरूप का ध्यान नहीं कर सकता। यदि कोई यह कहे कि हम मानसिक मूर्ति की कल्पना कर लेंगे तो उसके लिए भी द्रव्य मूर्ति का आलम्बन आवश्यक है। मानसिक मूर्ति की कपोल कल्पना का परिणाम तो मात्र ध्यान रहित अवस्था ही हो सकती है।

समवसरण में तीर्थंकर परमात्मा तो मात्र पूर्व दिशा में ही मुख करके बैठते हैं शेष दिशाओं में तो प्रतिबिम्ब के रूप में प्रतिमा की ही स्थापना की जाती है। इससे भी चित्त की एकाग्रता के लिए मूर्ति की आवश्यकता सुसिद्ध हो जाती है।

यदि गुणस्थान की अपेक्षा चिंतन करें तो वर्तमान में कोई भी जीव सातवें गुणस्थान से ऊपर नहीं चढ़ सकता और उसमें भी सातवें गुणस्थान की स्थिति भी मात्र अन्तर्मुहूर्त्त काल है। छट्ठे गुणस्थान तक प्रमादयुक्त अवस्था होने से निरालम्बन ध्यान संभव ही नहीं है। इससे निर्विवादत: वर्तमान में मूर्ति की आवश्यकता सिद्ध हो जाती है।

शंका– मूर्ति एकेन्द्रिय पाषाण की होने से प्रथम गुणस्थानवर्ती हुई तब चौथे-पाँचवे गुणस्थानवर्ती श्रावक एवं छट्ठे-सातवें गुणस्थानवर्ती साधु उसे किस प्रकार वंदन कर सकते हैं?

समाधान– गुणस्थानक यह सचित्त जीवों के ही होता है। पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय जीव होने से वे प्रथम गुणस्थानवर्ती होते हैं परंतु खदान से अलग करके उस पर शस्त्रादि लगाने के पश्चात वह अचित्त हो जाता है। अचेतन वस्तु के गुणस्थानक नहीं होता। अब यदि गुणस्थानक रहित वस्तु को मानने से इनकार किया जाए तो सिद्ध भगवान सर्वथा गुणस्थान के रहित होते हैं। फिर भी समस्त कर्मों का क्षय करने से संसारी आत्मा के लिए परम श्रद्धेय एवं पूज्य हैं। गुणस्थानक संसारी जीवों के लिए है, सिद्धों के लिए नहीं।

दूसरा तथ्य यह है कि जिस प्रकार मूर्ति गुणस्थानक रहित है कि वैसे ही कागज आदि से बनी पुस्तक का भी कोई गुणस्थानक होता नहीं। फिर भी प्रत्येक धर्म में अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थों को आदर एवं सम्मान के साथ पूजा जाता है। पुस्तक भी एकेन्द्रिय स्थानवर्ती वनस्पतिकाय से ही निर्मित हैं। जब शास्त्र पूजनीय हो सकते हैं तो जिन प्रतिमा क्यों नहीं?

भगवती सूत्र में 'नमो बंभीए लिविए' कह कर गणधर भगवन्तों ने अक्षर रूपी ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया हैं, इसमें कौनसा गुणस्थानक है? मृतक तीर्थंकर या साधु का शरीर भी अचेतन होने से गुणस्थानक रहित है! फिर भी उनके अन्तिम दर्शन एवं अग्नि संस्कार के लिए लोग उमड़ते हैं। जब यह गुरु भक्ति का कार्य उचित हैं तो फिर प्रतिमा का पूजन-वंदन आदि जिनभक्ति के कार्य अनुचित कैसे हो सकते हैं?

शंका– पत्थर की मूर्ति की पूजा-भक्ति करने से क्या फायदा? क्या मूर्ति स्तुति, स्तवन आदि सुन सकती है?

समाधान– पाषाण निर्मित प्रतिमा तो मात्र एक आलंबन है, वीतराग

परमात्मा के गुण स्मरण एवं स्तवन आदि के लिए। जब भी किसी द्रव्य से किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है तो वह निर्मित द्रव्य ही प्रमुख या वर्णनीय होता है उसकी सामग्री नहीं। हम Computer, Bike, घड़ा, इंसान आदि को उनके रूप से जानते हैं न कि वे जिस द्रव्य से निर्मित हैं उससे।

दूसरा तथ्य यह है कि हम जब प्रतिमा को वंदन करते हैं तब प्रतिमा में आरोपित वीतराग गुणों को वंदन करते हैं न कि उस पत्थर को। निरंजन, निराकार, निर्मोह, निर्द्वेष, सर्वज्ञ, मनमोहन आदि वीतराग परमात्मा के संबोधन हैं, पत्थर के नहीं। जब पूजक व्यक्ति मूर्ति में पूजा योग्य गुणों का आरोपण करता है तब उसे प्रतिमा में साक्षात परमात्मा ही प्रतिभासित होते हैं। हम जिन भावों से प्रतिमा को देखते हैं हमें वह वैसी ही नजर आती है और वैसे ही भावों का निर्माण हमारे भीतर भी करती है।

वैज्ञानिक शोध के अनुसार जब भी हम श्रद्धा भाव से किसी का स्मरण या दर्शन करते है तब हमारे भीतर स्फूर्त श्रद्धा गुण के कारण स्वयमेव ही कई गुणों का जागरण होता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव संतुलित एवं सक्रिय बनता है। इससे व्यक्ति का आध्यात्मिक ऊर्ध्वारोहण होता है।

वस्तुतः पत्थर की मूर्ति कोई फल नहीं देती परंतु उस प्रतिमा के आलंबन से हमारे भीतर में जागृत शुभ भाव ही हमारे आत्मोत्थान में सहायक बनते हैं।

शंका– पत्थर की मूर्ति को भगवान कैसे मानें, क्योंकि रूखी-सुखी रोटी को मिठाई मानने से क्या वह मिठाई बन जाएगी?

समाधान– प्रसिद्ध उक्ति है 'भूख मीठी या लापसी', इससे स्पष्ट है कि स्वाद रोटी या मिठाई की अपेक्षा खाने वाले के मन और जीभ से अधिक जुड़ा हुआ है। भूखे व्यक्ति को रोटी प्राप्त होने पर वही आनंद अनुभूत होता है जो उसे मिठाई में होता है। वहीं दूसरी ओर तृप्त या असंतोषी व्यक्ति को मिठाई में भी रुचि नहीं होती। अतः भूख लापसी से ज्यादा मीठी होती है, वैसे ही शुभ परिणामी आत्मार्थी जीवों को जिन प्रतिमा में ही साक्षात परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं, जबकि भोगार्थी जीव में साक्षात परमात्मा के दर्शन करने पर भी शुभ भाव जागृत नहीं होते।

जिस प्रकार संयम ग्रहण करते ही एक गृहस्थ साधु के रूप में वंदनीय बन जाता है, एक Match या Trophy जीतने के बाद एक Team World

Champion बन जाती है, शपथ ग्रहण करते ही सामान्य व्यक्ति President of India बन जाता है, वैसे ही अंजनशलाका-प्रतिष्ठा आदि विधानों के द्वारा पत्थर की मूर्ति में भाव परमात्मा का आरोपण किया जाता है जिससे वह परमात्मा के समान ही पूजनीय एवं वंदनीय बन जाती है।

शंका– अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा स्थापित जिन प्रतिमा वंदनीय है या नहीं?

समाधान– अन्य धर्मावलम्बियों के द्वारा जिन प्रतिमा यदि जिनेश्वर देव के स्वरूप में स्थापित एवं पूजित हो तो वह प्रतिमा पूजनीय एवं वंदनीय है। परन्तु जहाँ उसकी पूजा जैन विधि के अनुसार न होती हो या जहाँ उसे किसी अन्य इष्टदेव के रूप में पूजा जाता हो वहाँ पर जिन प्रतिमा के रूप में उसकी पूजा करने का शास्त्रों में सर्वथा निषेध है क्योंकि उस प्रतिमा में वैसे ही भाव परमाणुओं का आरोपण हो जाता है।

आगमों में कहा गया है कि मिथ्यात्वी द्वारा गृहीत सम्यक श्रुत भी मिथ्या हो जाता है, वैसे ही मिथ्यात्वी द्वारा गृहीत जिन प्रतिमा भी अपूजनीय हो जाती है क्योंकि वह प्रतिमा मिथ्यात्व का ही वर्द्धन करती है। अतः अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा स्थापित जिनप्रतिमा प्रसंग के अनुसार वंदनीय या अवंदनीय मानी जाती है।

शंका– परमात्मा के नाम को तो स्वीकार करें परन्तु उनकी आकृति या साकार प्रतिमा स्वरूप को न माने तो क्या दोष?

समाधान– रोटी का नाम मात्र रटने से भूख शान्त भूख शान्त नहीं होती। करने के लिए रोटी के स्वरूप को जानना और उसे ग्रहण करना जरुरी है। यदि कोई शेर या साँप का नाम मात्र जाने और उन्हें पहचाने नहीं तो क्या वह उनसे अपनी रक्षा कर सकता है? इसी प्रकार यदि कोई मात्र परमात्मा का नाम स्मरण करें उनके गुणों या आकृति को नहीं जाने तो उसके मन में परमात्मा के प्रति श्रद्धा कैसे उत्पन्न हो सकती है? जिसका नाम है उसकी कोई न कोई आकृति भी अवश्य होनी चाहिए। शास्त्रों में अरूपी आकाश का भी एक आकार माना गया है।

कुछ लोग तर्क देते हैं नाम गुणों का होता है आकार का नहीं अतः आकार को नहीं माने तो चल सकता है। भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर दोनों

गुणों की दृष्टि से समान हैं पर जिसका नाम लेते हैं उसी का स्मरण होता है। इसी के साथ आकार में विशेष बोध शक्ति भी रही हुई है। नाम और आकार दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। मदर टेरेसा का नाम लेने पर हमारे सामने मदर टेरेसा की ही छाप आती है इंदिरा गांधी या माधुरी दीक्षित की नहीं। अत: परमात्मा के नाम के साथ आकृति को स्वीकार करना भी परमावश्यक है।

शंका– आत्मा की उन्नति में पंचेन्द्रिय साधु का आलंबन अधिक लाभकारी है या एकेन्द्रिय पाषाण मूर्ति का?

समाधान– सर्वप्रथम तो मूर्ति अचेतन होने से एकेन्द्रिय नहीं है। साधु को किया गया वंदन या नमस्कार वस्तुत: साधु के शरीर को नहीं, अपितु उसके 27 गुणों को किया जाता है क्योंकि शरीर तो दीक्षा से पहले भी था और मृत्यु के बाद भी रहेगा पर उसे वंदन कोई नहीं करता। क्योंकि शरीर स्वयं तो अचेतन है उसमें चेतनत्व आत्मा के कारण है अत: उस शरीर का आलंबन लेने से क्या फायदा? इसी प्रकार पूजा-भक्ति करते समय पाषाण प्रतिमा का आलंबन नहीं लिया जाता अपितु जिसकी मूर्ति है उन परमात्मा के गुणों का आलंबन लिया जाता है। अत: गुणाधिकता की अपेक्षा मूर्ति का आलंबन साधु शरीर से अधिक कल्याणकारी है।

शंका– प्रतिमा निर्जीव है फिर उसकी पूजा क्यों की जाती है?

समाधान– कोई भी व्यक्ति या वस्तु उसकी सजीवता या निर्जीवता की वजह से पूजनीय नहीं होती। वह पूजनीय होती है अपने गुणों से। दक्षिणावर्त्त शंख, कामकुंभ, चिंतामणि रत्न आदि पदार्थ निर्जीव होते हुए भी पूजनीय हैं क्योंकि यह पूजने वाले को वांछित फल देते हैं वैसे ही जिन प्रतिमा निर्जीव होते हुए भी अपनी शांत-प्रशांत मुद्रा के द्वारा पूजन करने वाले को शुभ फल देती है।

शंका– यदि मूर्ति वीतराग परमात्मा के तुल्य है तो फिर इस पंचम आरे में तीर्थंकर का विरह क्यों बताया गया है?

समाधान– भरत क्षेत्र के पाँचवे आरे में तीर्थंकरों का विरह भाव तीर्थंकर की अपेक्षा से है, स्थापना तीर्थंकर की अपेक्षा से नहीं। किसी गाँव में यदि चातुर्मास हेतु साधु-साध्वी न विराजमान हों तो यही कहा जाता है कि 'इस बार हमारे यहाँ साधु-साध्वी नहीं है' पर इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वहाँ किसी के घर में साधु-साध्वी का फोटो भी नहीं है। इसी प्रकार जिन प्रतिमा

स्थापना निक्षेप है और साक्षात भगवान भाव निक्षेप है। वर्तमान में भाव निक्षेप का अभाव है स्थापना निक्षेप का नहीं।

शंका— जिन प्रतिमा का स्नान करना विलेपन करना, उन पर पुष्प, आभूषण आदि चढ़ाना क्या त्यागी को भोगी बनाने जैसा नहीं है?

समाधान— व्याकरण शास्त्रियों ने अरहन्त शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—

अरिहंति वंदणनमंसणाइ, अरिहंति पूअसक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरहा, अरहंता तेण वुच्चंति।।

अर्थात जो वंदन-नमस्कार, पूजा-सत्कार और सिद्धि गमन के योग्य हैं उसे अरहन्त कहा जाता है। इस प्रकार अरहन्त नाम ही द्रव्य पूजा का सूचक है।

जिनके राग-द्वेष पूर्ण रूप से समाप्त हो गए हैं, वे दूसरों के द्वारा की गई पूजा से भोगी या रोगी नहीं बनते। यदि परमात्मा पूजा-सत्कार करने से भोगी बन जाएंगे तो क्या किसी के द्वारा निन्दा करने पर द्वेषी बन जाएंगे। परमात्मा का स्वाभाविक गुण ही है कि वे पूजक एवं निंदक के प्रति समभाव रखते हैं। कमठ और धरणेन्द्र दोनों के प्रति परमात्मा के मन में समान भाव थे। पूजा या निंदा करने वाले जीव को उसके भावों के अनुसार फल मिलता है।

आगमों में केवलज्ञान के पश्चात्त परमात्मा के आठ प्रतिहार्य का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है। करोड़ों देवी-देवता परमात्मा की जय-जयकार करते हैं, भव्य समवसरण की रचना होती है, विहार करते समय परमात्मा स्वर्ण कमल पर चलते हैं। क्या इन सबसे परमात्मा का त्यागीपन चला जाता है? यदि नहीं तो फिर जिन प्रतिमा पर द्रव्य चढ़ाने से वह भोगी कैसे बन सकते हैं?

भोगवृत्ति बाह्य पदार्थों पर नहीं आंतरिक भावों पर निर्भर करती है। परमात्मा को जो-जो द्रव्य अर्पित किए जाते हैं वे वस्तुतः द्रव्य आसक्ति को न्यून करने तथा परमात्मा की उच्च अवस्थाओं का स्मरण कर स्वयं के जीवन को तद्रूप बनाने के भावों से किया जाता है।

अतः द्रव्य चढ़ाने से परमात्मा भोगी नहीं बनते अपितु द्रव्य अर्पण करने वाले की भोगवृत्ति न्यून होती है।

शंका— मूर्ति पूजा का समावेश दान, शील, तप और भावना इन चार प्रकार के धर्म में से किसमें होता है?

समाधान– मूर्तिपूजा में चारों प्रकार के धर्म की आराधना होती है।

दानधर्म– चार प्रकार के दान में सुपात्र-दान सर्वश्रेष्ठ दान है। इसके दो भेद हैं– 1. अकर्मी (कर्म रहित) सुपात्रदान 2. सकर्मी (कर्म सहित) सुपात्रदान। पात्र के भी दो प्रकार हैं– 1. रत्नपात्र और 2. स्वर्णपात्र। अरिहन्त एवं सिद्ध परमात्मा आशा-तृष्णा एवं कर्म रहित होने से रत्नपात्र हैं, उन्हें उत्तम द्रव्य समर्पित करना अकर्मी सुपात्रदान कहलाता है। अतः परमात्मा के सम्मुख द्रव्य पूजा करने से सर्वप्रथम दानधर्म का पालन होता है।

शील धर्म– इन्द्रियों को वश में रखना शील धर्म है। जब कोई साधक भाव युक्त होकर पूजा करता है तब पाँचों इन्द्रियाँ संवर भाव को प्राप्त होती है। पूजा करते समय व्यक्ति सहजतया मैथुन आदि भावों से विरत रहता है। इससे निश्चित रूप से शील धर्म का पालन होता है।

तप धर्म– तप के मुख्य दो प्रकार हैं बाह्य तप एवं आभ्यंतर तप जिन प्रतिमा की पूजा करते समय चारों आहार का त्याग होने से बाह्य तप और जिनेश्वर परमात्मा का विनय, वैयावच्च, ध्यान आदि करने से आभ्यंतर तप इस प्रकार दोनों प्रकार के तप का पालन होता है।

भावनाधर्म– उत्तम भावों से वासित होते हुए बारह प्रकार की भावना का चिंतन करना भावना धर्म है। जिनपूजा करते हुए संसार के प्रति अनासक्ति का वर्धन करने वाले भाव स्वभावतया उत्पन्न हो जाते है। अतः भावनाधर्म का भी पालन हो ही जाता है।

इस प्रकार जिन पूजा में चारों प्रकार के धर्म का समावेश हो जाता है।

शंका– श्रावक के बारह व्रतों में जिन पूजा किस व्रत के अन्तर्गत आती है?

समाधान– श्रावक के लिए जिनपूजा एक आवश्यक कर्त्तव्य है। जो व्यक्ति यह मानता है कि देवों में मात्र अरिहंत परमात्मा ही पूजनीय एवं वंदनीय है वह सम्यगदृष्टि जीव कहा जाता है। बारह व्रतों का मूल सम्यक्त्व है अतः जिनपूजा यह बारह व्रतों का सार है।

शंका– जिन प्रतिमा की पूजा करने से क्या लाभ?

समाधान– आचार्य हरिभद्रीय रचित पूजाविधि विंशिका के अनुसार तीर्थंकर भगवान की पूजा से इस जन्म के पापों का क्षय होता है, पुण्यानुबंधी

पुण्य का उपार्जन होता है, इस भव और परभव में यश, गौरव और समस्त भोगों की प्राप्ति होती है तथा अन्त में सर्व कर्मों का क्षय होने से मोक्ष फल की उपलब्धि होती है।

शंका– जब साक्षात अरिहंत परमात्मा एवं साधुओं को महिलाएँ स्पर्श नहीं करती तो फिर जिन प्रतिमा की पूजा महिलाएँ कैसे कर सकती है? क्या इसमें संघट्टे का दोष नहीं लगता?

समाधान– सचेतन जीवित व्यक्ति तथा फोटो या मूर्ति में अन्तर होता है। सचेतन व्यक्ति जहाँ ज्ञान आदि उपयोग से युक्त होता है वहीं मूर्ति अचेतन होने से उपयोग आदि से रहित होती है। जैन शास्त्रों में नर-मादा स्पर्श का निषेध सदाचार, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा आदि के हेतु से किया गया है। छद्मस्थ प्राणी में काम विकार, विषय वासना, राग द्वेष आदि संभव है। अचेतन द्रव्य एवं सचेतन वीतराग परमात्मा में यह विकार असंभव है।

जीवित तीर्थंकर में संघट्टे का निषेध व्यवहार नय की अपेक्षा किया गया है ताकि छद्मस्थ श्रमण-श्रमणी उसे निर्दोष न मान लें। मूर्ति के स्पर्श में यह दोष संभव नहीं है इसीलिए प्रतिमा के स्पर्श में संघट्टा नहीं माना है। यदि इसमें संघट्टा माने तो पत्र-पत्रिका, पुस्तक आदि में भी चित्रों का स्पर्श होने पर संघट्टा मानना होगा। अतः मूर्ति पूजा में संघट्टे की मान्यता निराधार है।

शंका– जिन प्रतिमा को नहीं मानने में क्या हानि है?

समाधान– सत्य को सत्य नहीं मानना एक प्रकार का मिथ्यात्व है अतः सर्वप्रथम तो इससे सम्यक्त्व दूषित होता है। जिन प्रतिमा रूपी कल्याणकारी शाश्वत आलंबन को न मानने से व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में हानियाँ होती है। जैसे कि–

- जिन पूजा को अमान्य करने पर तत्सम्बन्धी आगम भी अमान्य हो जाते हैं, इससे ज्ञान एवं ज्ञानियों की आशातना होती है।
- स्वमत की पुष्टि हेतु प्रतिमा पूजन सम्बन्धी आगम पाठांश को बदलने से उत्सूत्र प्ररूपणा का दोष लगता है।
- मूर्ति को न मानने से तीर्थ भूमियों की स्पर्शना का लाभ नहीं मिलता। तीर्थ यात्रा के अनेक लाभों से भी वंछित रह जाते हैं।
- जिन मंदिर न जाने से प्रभु दर्शन एवं परमात्म भक्ति के लाभ से महरूम

रह जाते हैं।

• जिन प्रतिमा एवं जिन भक्तों की निंदा और टीका-टिप्पणी करने से गाढ़ कर्मों का बंधन होता है।

• व्यावहारिक स्तर पर जिन मंदिर, जिन प्रतिमा आदि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक समृद्धि के सूचक हैं, मूर्ति न मानने से इनका विरोध हो जाता है।

• संसार एवं गृहस्थी के व्यामोह से निकलकर आत्म आराधना के मार्ग में जुड़ नहीं पाते।

इसी तरह की अनेक हानियाँ जिन प्रतिमा को नहीं मानने से होती है।

शंका– जिन प्रतिमा कौन से आसन में होती है और क्यों?

समाधान– जिन प्रतिमा मुख्यत: दो प्रकार के आसन में होती हैं– 1. पद्मासन और 2. जिनमुद्रा रूप कायोत्सर्ग मुद्रा। अरिहंत परमात्मा इसी अवस्था में मुक्ति प्राप्त करते हैं। सिद्ध अवस्था में भी उनके आत्म प्रदेश इसी रूप में रहते हैं अत: जिन प्रतिमा दो आसन में ही होती है।

शंका– वीतराग भगवान के सामने दादा गुरुदेव या किसी भी गुरु प्रतिमा या चरण की पूजा आदि हो सकती है?

समाधान– इस विषय में दो मत प्रचलित है। कुछ आचार्यों के अनुसार परमात्मा के सामने गुरु को वंदन आदि करने से परमात्मा की आशातना होती है। परंतु यदि सूक्ष्मता पूर्वक विचार करें तो नाकोडा तीर्थ में परमात्मा के सामने ही भैरवजी की पूजा-आरती आदि की जाती है। परमात्मा की साक्षी में ही पार्श्व-पद्मावती पूजन आदि करवाए जाते हैं। तब क्या परमात्मा की आशातना नहीं होती?

शास्त्रों का परिशीलन करें तो यह ज्ञात होता है कि परमात्मा के सामने गुरु को वंदन आदि हो सकता है। उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। परंतु गुरु से पहले परमात्मा का पूजन-वंदन आदि करना चाहिए। नवकार मंत्र इसका प्रबल प्रमाण है, इसमें परमात्मा के समान ही आचार्य, उपाध्याय और साधु को वंदन किया जाता है। हेमचन्द्राचार्य योगशास्त्र में कहते हैं–

ततो गुरुणामभ्यर्णे, प्रतिपत्ति पुर:सरम् ।
विदधीत विशुद्धात्मा, प्रत्याख्यान प्रकाशनम् ।।25।।

व्याख्या– ततोनन्तरं गुरुणां धर्माचार्याणां देववंदनार्थमागतानां

स्नात्रादिदर्शने, धर्मक्रियार्थं तत्रैव स्थितानां अभ्युत्थानं, तदलोके अभियानं च तदगमे शिरस्यंजलि संश्लेषः स्वयमासन ढौकनम् ।।125।।

आसनाभिग्रहो भक्त्या, वंदना पर्युपासनम् ।
तद्यानेनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरोः ।।127।।

जिन मंदिर में गुरु महाराज के आने पर उनका आसन आदि ग्रहण करना चाहिए तथा विधिवत वंदना और उपासना करनी चाहिए।

तपागच्छाचार्य विजयलब्धिसूरि एवं आचार्य कीर्तियशसूरिजी लब्धिप्रश्न एवं सन्मार्ग में इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं कि जिनमूर्ति को वंदन करने के बाद गुरु मूर्ति को वंदन कर सकते हैं। तत्त्वत्रयी में भी देव के बाद गुरु का स्थान है इसलिए परमात्मा के सामने गुरु को वंदन करना दोषपूर्ण नहीं है।

शंका– खंडित प्रतिमा की पूजा हो सकती है?

समाधान– शास्त्र मर्यादा के अनुसार यदि प्रतिमा का कोई मुख्य अंग जैसे कि मस्तक आदि खंडित हो जाए तो गीतार्थ गुरु की अनुमति पूर्वक उसे विसर्जित कर देना चाहिए। परंतु अंगुली, नासिका आदि उपांग खंडित होने पर लेप एवं अठारह अभिषेक करके उसकी पूजा चालू रखनी चाहिए। नवखंडा पार्श्वनाथ की प्रतिमा खंडित अवस्था में भी पूजी जाती है यह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

शंका– जिन प्रतिमा कैसी बनवानी चाहिए?

समाधान– व्यवहारभाष्य के अनुसार प्रासादिक लक्षणों से युक्त अलंकारमय जिन प्रतिमा बनवानी चाहिए।

जैसा कि कहा गया है–

पासाईआ पडिमा, लक्खणजुत्ता समत्थलंकरणा ।
जइ पल्हाएइ मणं, तह निज्जरमो विआणाहि ।।

सर्व प्रकार के अलंकारों से शोभायमान, लक्षण युक्त प्रसन्नमुद्रा वाली जिनप्रतिमा निर्मित करवानी चाहिए। ऐसी प्रतिमा के दर्शन से मन में प्रसन्नता एवं कर्मों की निर्जरा होती है।

चक्षु, तिलक, श्रीवत्स, केशावली आदि से युक्त प्रतिमा अलंकार युक्त प्रतिमा कहलाती है।

शंका– प्राचीन तीर्थों में जहाँ अधिक जिनबिम्ब हैं और पूजा-प्रक्षाल आदि

की अच्छी व्यवस्था नहीं है, वहाँ की प्रतिमाएँ अन्य स्थान पर भिजवा सकते हैं?

समाधान– जिनप्रतिमा जिनेश्वर परमात्मा के समान है अतः उनका उचित आदर-सम्मान होना अत्यावश्यक है। 'स्तव परिज्ञा' आदि ग्रन्थों के उल्लेखानुसार जिनप्रतिमा की हर दिन प्रक्षाल-पूजा होनी चाहिए। यदि कहीं पर मूर्तियों की संख्या अधिक हो और पूजा आदि व्यवस्थित न होने से जिन प्रतिमाओं की आशातना होती हो तो पदाधिकारियों को प्रतिमाओं की अधिक संख्या का मोह छोड़कर उन्हें आवश्यक स्थानों या नूतन निर्माणाधीन जिनमंदिरों में अवश्य भिजवाना चाहिए। इससे प्रतिमा का उचित आदर सत्कार होगा। लोगों को प्राचीन जिन प्रतिमाओं की भक्ति का लाभ मिलेगा तथा आशातना से बचाव होगा।

शंका– जिन प्रतिमा के हृदय स्थल पर श्रीवत्स क्यों होता है?

समाधान– त्रेसठ शलाका पुरुषों के वक्षस्थल पर खड्डा नहीं होता अपितु उनका वह भाग उभरा हुआ होता है। यह उनका एक शुभ लक्षण है। इसी के प्रतिरूप में जिन प्रतिमा पर श्रीवत्स बनाया जाता है।

शंका– जिन प्रतिमा निर्माण में उपयोगी पाषाण का बहुमान कैसे और क्यों करना चाहिए?

समाधान– जिन प्रतिमा निर्माण हेतु पाषाण लाने के लिए न्यायोपार्जित द्रव्य का ही उपयोग करना चाहिए। इसी के साथ शिल्पी को प्रसन्न रखना, भूमि के अधिष्ठायक क्षेत्र देव की आज्ञा लेने हेतु तप करना, पाषाण की पूजा करना,अमुक गाँव के लोगों को प्रीतिदान देना आदि भी आवश्यक माना गया है। इससे जिनप्रतिमा अधिक प्रभावी बनती है तथा कई अपेक्षित विघ्नों का शमन हो जाता है। नैगम नय की अपेक्षा से खदान का पाषाण प्रतिमा का पूर्वरूप होने से प्रतिमा के समान ही है अतः उसे बहुमान पूर्वक लाना चाहिए।

शंका– मूतियों का लेप आदि करवाने पर उनकी प्रक्षाल-पूजा तुरन्त कर सकते हैं या अठारह अभिषेक करने के बाद करनी चाहिए?

समाधान– आचार्यों के अनुसार नूतन लेपकृत प्रतिमाओं की प्रक्षाल-पूजा अठारह अभिषेक करवाने के पश्चात करनी चाहिए। परंतु अठारह अभिषेक न हो तब तक पूजा बंद नहीं करनी चाहिए। लेप बिगड़े नहीं इस दृष्टि से नौ अंग के

स्थान पर मात्र चरण युगल की पूजा कर लेनी चाहिए।

शंका— शाश्वती प्रतिमाओं की पूजा हर रोज होती है या कभी-कभी?

समाधान— नंदीश्वर द्वीप एवं देवलोक आदि में शाश्वत जिन प्रतिमाओं का उल्लेख आता हैं। वहाँ पर दिन-रात का व्यवहार नहीं होता, अत: नित्यपूजा का प्रश्न ही नहीं होता। वहाँ देवताओं की जब इच्छा हो तब अथवा विशेष प्रसंगों पर जिनपूजा के उल्लेख शास्त्रों में मिलते हैं। वहाँ पर प्रक्षाल पूजा आदि अष्टप्रकारी पूजा के रूप में नहीं अपितु अंगपूजा, अग्रपूजा एवं भावपूजा के रूप में होती है।

शंका— जिनमंदिर में मंगलमूर्ति की स्थापना क्यों की जाती है?

समाधान— समवसरण में जिस प्रकार पूर्व दिशा में परमात्मा स्वयं विराजमान होते हैं तथा शेष तीन दिशाओं में परमात्मा के प्रतिबिम्ब के रूप में मूर्तियाँ स्थापित की जाती है वैसे ही जिनमंदिर में परमात्मा के प्रतिबिम्ब के रूप में मंगलमूर्ति की स्थापना करते हैं। जन मान्यतानुसार यदि परमात्मा की पीठ नगर की तरफ हो तो अमंगलकारी होती है इस हेतु से भी मंगलमूर्ति की स्थापना की जाती है।

शंका— दादा गुरुदेव की पूजा कौन-सी अंगुली से एवं कितने अंगों की करनी चाहिए?

समाधान— गुरुमूर्ति की पूजा अनामिका अंगुली से करनी चाहिए। कई लोग कहते हैं कि दादा गुरुदेव की पूजा अंगूठे से करनी चाहिए। यह अविधि है अत: इससे घोर आशातना होती है। अंगूठे से साधर्मिक श्रावक-श्राविकाओं के तिलक किया जाता है। गुरुदेव हमारे साधर्मिक नहीं अपितु विशेष उपकारी है। आगमों में आचार्य को तीर्थंकर के समान माना है **"तित्थयर समो सूरि"** अत: उनकी पूजा तीर्थंकरों के समान अनामिका अंगुली से ही करनी चाहिए। शास्त्रों में भी पूज्यजनों की पूजा अनामिका से करने का निर्देश है।

आचार्य को तीर्थंकर के तुल्य मानते हुए चंदन आदि सुगंधी द्रव्यों से पूजा करने का विधान आचारांग आदि आगमों में भी उपलब्ध है।

तित्थगराण भगवओ, पवयण पावयणि अइसअड्ढीणं।
अभिगमण णमण दरिसण, कित्तण संपूअणा थुणणा।।
।।333।।

टीका– तीर्थकृतां भगवतां प्रवचनस्य द्वादशांगस्य गणिपिटकस्य तथा प्रावचनिनां आचार्यादीनां युगप्रधानानां तथातिशयिना–मृद्धितमां केवलिमनः पर्यायावधिमच्यतुर्दश पूर्वविदां तथा मर्षोषध्यादि प्राप्त ऋद्धीनांयदभिगमनं गत्वा च दर्शनं तथा गुणोत्कीर्त्तनं संपूजनं गन्धादिना स्तोत्रैः स्त्वनमित्यादिका दर्शनभावना, अनया हि दर्शनभावनानवरतं भाव्यमानया दर्शन विशुद्धिर्भवतीति ।।

भावार्थ– तीर्थंकर भगवंत, आचार्य भगवंत, युगप्रधान, केवली, मनःपर्यव ज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दश पूर्वधर और आमर्षोषधि ऋद्धि वाले आचार्य भगवंतो के सामने जाकर उनके दर्शन करना, गुण कीर्तन करना, सुगंधी द्रव्यों से पूजन करना, स्तोत्र आदि से स्तुति करना, यह सब दर्शन भावना की क्रिया है। इस भावना का निरंतर सेवन करने से दर्शन विशुद्धि होती है।

यहाँ पर गुरु भगवंतों की चंदन आदि सुगंधी द्रव्यों से पूजन करने का विधान स्पष्ट हो जाता है।

शास्त्रों में अनेक स्थानों पर नवांगी पूजा का विधान भी प्राप्त होता है। **त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य, यतिगुरुं नमस्कुर्यात्। आचार दिनकर नवभिःस्वर्णरुप्यमुद्राभिः गुरोर्नवांगापूजां कुर्यात्।'**

अर्थात गुरु महाराज की तीन प्रदक्षिणा देने के बाद नौ स्वर्ण मुद्राओं से उनकी नवांगी पूजा करें। इसी प्रकार का वर्णन द्रव्य सप्ततिका, तत्त्वनिर्णयप्रसाद, धर्मसंग्रह, प्रतिष्ठा कल्प आदि कई ग्रन्थों में उपलब्ध है। इससे सिद्ध होता है कि दादा गुरु की नवांगी पूजा करनी चाहिए।

शंका– जिस द्रव्य पर परमात्मा की दृष्टि पड़ जाए या जो द्रव्य परमात्मा के मंदिर में चला जाए उसे अपने प्रयोग में लेना या नहीं?

समाधान– भगवान की दृष्टि पड़ने से द्रव्य वापरने योग्य नहीं रहता यह एक भ्रान्त मान्यता है। भगवान की दृष्टि तो अमृतमय होती है। उस दृष्टि के संयोग से वस्तु एवं व्यक्ति में रहे दोषों का उन्मूलन होता है, दोषों की उत्पत्ति नहीं। यदि ऐसा होता, तो रथयात्रा आदि के अवसर पर रथ में विराजित परमात्मा की दृष्टि सर्वत्र पड़ती है, तो क्या सम्पूर्ण वस्तु अग्राह्य हो जाएगी? परमात्मा की दृष्टि जिस पर भी पड़ जाए उसका मंगल ही होता है। कुमारपाल भाई शाह के अनुसार परमात्मा की दृष्टि तो जनपथ पर पड़नी चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति

का मंगल हो और इसी हेतु से उनके अनुसार मंदिर के मुख्य दरवाजे के पास पर्दा या पट आदि नहीं लगाने चाहिए। अतः दृष्टि पड़ जाए तो वस्तु प्रयोग में नहीं लेना यह एक मिथ्या धारणा है।

मंदिर में गई हुई वस्तु के प्रयोग नहीं करने का मुख्य कारण विनय है। जिस प्रकार आज हम उपाश्रय और गुरु महाराज आदि के सामने कुछ भी लेकर चले जाते हैं और बच्चों को खिलाने-पिलाने का विवेक भी चला गया है वैसे ही यदि मंदिर में गई वस्तु उपयोग में लेने लगें तो फिर वहाँ भी लोगों का विवेक लुप्त हो जाएगा। अतः विनय आचार का पालन करने की अपेक्षा से मंदिर में गई वस्तु को पुनः उपयोगी नहीं माना है। विशेष परिस्थिति में गीतार्थ गुरु आदि की आज्ञा अनुसार करना चाहिए।

●

अध्याय-3

करिए जिनदर्शन से निज दर्शन

शंका– व्यावहारिक स्तर पर मूर्ति पूजा की महत्ता को स्पष्ट कीजिए।

समाधान– जहाँ पक्ष होता है वहाँ विपक्ष भी होता है। मूर्ति पूजा का विरोध कई जगह देखा जाता है। हजारों वर्षों से चल रहे इस विरोध का निराकरण आज भी नहीं हो पाया है कि मूर्ति पूजा करनी चाहिए या नहीं? यदि हम व्यवहार जगत पर दृष्टि दौड़ाए तो दिनभर में हम अनेक सजीव-निर्जीव मूर्तियों के दर्शन करते हैं, उनका सम्मान एवं पूजन करते हैं। यदि मूर्ति पूजा के सार तत्त्व को समझे तो सिर्फ मूर्ति की पूजा करना ही मूर्ति पूजा नहीं है। इसका हार्द है किसी को अपना आदर्श या पूज्य मानकर उनका विनय, सम्मान आदि करना। हम दिनभर में अपने बाप-दादा, बड़ी-बड़ी सामाजिक हस्तियाँ आदि अनेक लोगों का सम्मान करते हैं। उनके आदेश का पालन करते हैं। अपने Role Models का अनुकरण करते हैं। प्रसिद्ध लोगों की समाधि स्थलों आदि पर जाकर फूल चढ़ाते हैं। यह सब किसी न किसी रूप में मूर्ति पूजा है। अत: सजीव या निर्जीव किसी न किसी रूप में मूर्ति का महत्त्व देखते हैं। मुख्य रूप से जो विरोध देखा जाता है वह मूर्ति पूजा को लेकर है, उसकी आवश्यकता एवं प्रासंगिकता सर्वमान्य है।

शंका– मूर्ति पूजा का विरोध पूर्व काल में क्यों नहीं हुआ?

समाधान– प्रागैतिहासिक काल से ही जिनपूजा, जिनमंदिर एवं जिनमूर्ति के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। जैनागम, प्राचीन गुफाएँ एवं पुरातत्त्व की खोजों में इसके साक्षात प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यह संभव हो सकता है कि पूर्वकाल में पूजा-विधियों में इतने अधिक विधि-विधान एवं आडम्बर नहीं थे। गुफाओं को तोड़-फोड़कर जिनमंदिर एवं पत्थरों में ही जिन मूर्ति बना ली जानती थी। यही गुफाएँ श्रमणों एवं साधकों के लिए साधना स्थली के रूप में भी उपयोगी बन जाती थी। नित्य पूजा आदि का नियम न होने से गृहस्थ आता तो द्रव्य पूजा कर

लेता था पर क्रियाएँ भार रूप में थोपी हुई नहीं थी। वर्तमान युग की भाँति गृहस्थ वर्ग व्यस्त भी नहीं था। जब भी किसी व्यक्ति की इच्छा होती वह उद्यान आदि में मंदिर बनवाकर उसमें सुंदर लक्षणयुक्त जिन प्रतिमा की स्थापना कर देता था और परमेष्ठि नमस्कारपूर्वक प्रतिष्ठा हो जाती थी। नित्यस्नान, मंदिर सुरक्षा, पुजारी आदि की आवश्यकता नहीं थी अत: किसी प्रकार के व्यवस्था की कोई चिंता नहीं थी।

भरत चक्रवर्ती की इच्छा हुई तो उन्होंने ऋषभदेव भगवान की संस्कार भूमि पर निषधा नामक चैत्य बनवाकर उसमें चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ स्थापित की। परन्तु उस मंदिर के लिए कोई विशेष व्यवस्था की ऐसा उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता।

सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने भी अपने पूर्वजों की कृति को चिरस्थायी बनाने हेतु मार्ग को दुर्गम बनाया पर वहाँ अन्य कोई व्यवस्था नहीं की।

जैनागमों के अनुसार नंदीश्वर, रूचक, कुण्डल आदि द्वीपों में भी शाश्वत जिन मंदिर एवं प्रतिमाएँ हैं। वहाँ भी विशेष पर्व प्रसंगों, अष्टाह्निका, कल्याणक आदि अवसरों पर देवी-देवताओं द्वारा भक्ति की जाती है। इसी प्रकार भवनपति देवों के देवविमान में स्थित जिन चैत्यों में भी नित्यपूजा करने का कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व काल में स्वाभाविक रूप से जो सहज संभव हो जाए वह किया जाता था। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय लोगों के परिणाम बहुत सरल थे एवं उनका बाह्य प्रवृत्तियों एवं हिंसक वृत्तियों में जुड़ाव कम था। वर्तमान की पूजा-विधानों में कई कालगत परिवर्तन आ चुके हैं। श्रावकों के मन में श्रद्धा एवं भक्ति-भाव का वेग कम होता जा रहा है तथा विधि-विधानों की अधिकता बढ़ती जा रही है। इस कारण कई लोगों को यह क्रियाएँ भार रूप लगती है। पुराने लोग सरल एवं सहज होने से उनकी श्रद्धा में तर्क एवं विरोध नहीं होता था।

यदि वर्तमान संदर्भों में मूर्ति पूजा के विरोध विषयक कारणों पर चिंतन करें तो जिन पूजा में आए परिवर्तन ही मात्र मूर्ति पूजा के विरोध का कारण नहीं है। लोगों की बदलती मानसिकता, आधुनिक जीवनशैली, आध्यात्मिक क्षेत्र में घटता रूझान, बढ़ती व्यावसायिक व्यस्तता, तर्कवादिता एवं स्वाभाविक वक्रता

भी इसके मुख्य कारण हैं। यदि 'अधिकस्य अधिकं फलं' को ध्यान में रखकर बढ़ते हुए विधानों को उल्लास भाव से किया जाए तो यह विधान आत्म कल्याणकारी सिद्ध हो सकते हैं। वर्तमान भौतिक परिप्रेक्ष्य में इनकी नित्यता एवं नियमबद्धता परमावश्यक है।

शंका– पूर्व काल में नित्य प्रक्षाल का विधान नहीं था तो फिर परवर्ती आचार्यों ने नित्य स्नान एवं विलेपन का विधान क्यों किया?

समाधान– पूर्व काल से जैन धर्म की पूजा पद्धति में, पंचोपचारी अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजाएँ विशेष प्रचलित रही है। इनमें से प्रथम की दो पूजाओं में जल पूजा के रूप में स्नान का विधान नहीं था। अष्टोपचारी पूजा में जल पूजा आठवें क्रम पर थी उसमें भी मात्र जल कलश को भरकर रखने का विधान था। उस समय पर्व विशेष या महोत्सव आदि के अवसर पर स्नान क्रिया का विराट आयोजन रखा जाता था। परन्तु धीरे-धीरे पर्व विशेष में होने वाली स्नान क्रिया को जल पूजा के रूप में प्रथम स्थान मिल गया एवं पूजा विधानों में भी सर्वोपचारी पूजा का प्रचलन अधिक बढ़ गया था। इसी के साथ इसका एक मुख्य कारण था बारहवीं शती के समय उद्भव में आई अचलगच्छ परम्परा। उन्होंने प्रचलित अन्य परम्पराओं को मानने से इंकार कर दिया था। उनके अनुसार पूर्ववर्ती सभी परम्पराएँ अधिकांशतः सूत्र विरुद्ध एवं शिथिलाचारी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित थी। उन्होंने आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य अभयदेवसूरि आदि द्वारा स्वीकृत आचारों को अस्वीकृत कर दिया था। इसी क्रम में उन्होंने जिन पूजा विधानों में पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजा को अमान्य कर मात्र सत्रहभेदी पूजा या सर्वोपचारी पूजा को ही शास्त्रोक्त स्वीकार कर उसका प्रवर्तन करवाया। सत्रहभेदी पूजा में जल स्नान का विधान होने से अचलगच्छीय आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित मंदिरों में नित्य स्नान एवं विलेपन क्रिया होने लगी। इसी के अनुकरण एवं आकर्षण वश अन्य मंदिरों में इसका प्रचलन बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे यह एक नित्य विधान बन गया।

एक अन्य कारण जो मध्यम काल के आचरणा को देखकर प्रतिभासित होता है वह है चैत्यवासी परम्परा का आधिपत्य। चैत्यवासी मुनियों ने चैत्यालय सम्बन्धी विधि-विधानों एवं कार्यविधियों में रुचि लेते हुए उनमें वर्धन किया। कई विद्वद मुनियों की कृतियाँ तो सुविहित आचार्यों ने भी स्वीकृत की। इन

आपसी मतभेदों के चलते-चलते कई परिवर्तन जिन पूजा में आए। तत्समयवर्ती वैदिक एवं हिन्दू परम्परा में भी नित्य स्नान आदि की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, जिसका प्रभाव भी जैन समाज पर पड़ा। कई अन्य धर्मानुयायी जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित होकर जैन धर्म का स्वीकार करते थे किन्तु पूर्व संस्कार एवं संस्कृति का मिश्रण कहीं न कही हो ही जाता था। जिन धर्म अनुयायियों का रूझान अन्य परम्पराओं की ओर न बढ़ जाए इसलिए गीतार्थ आचार्यों द्वारा कुछ आवश्यक परिवर्तन लाए गए। शास्त्रों में यद्यपि नित्य प्रक्षाल का विधान नहीं था फिर भी इसका विरोध या मनाई भी कहीं परिलक्षित नहीं होती थी अत: आचार्यों ने नित्य प्रक्षाल का विधान किया होगा।

शंका– पूर्व काल में नित्य स्नान नहीं होती थी इसके आगमिक प्रमाण बताईए?

समाधान– पूजा सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन करते हुए हमने आगम काल से लेकर अब तक के अनेक ग्रन्थों का अवलोकन किया है जिनमें जिन पूजा सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। राजप्रश्नीय एवं जीवाजीवाभिगम सूत्र में नए उत्पन्न होने वाले देवों द्वारा की गई पूजा का वर्णन है। जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में इन्द्रों द्वारा भगवान ऋषभदेव के जन्माभिषेक और ज्ञाताधर्मकथासूत्र में विवाह के प्रसंग पर द्रौपदी द्वारा जिनपूजा करने का वर्णन है। राजप्रश्नीयसूत्र में भी यही वर्णन मिलता है। ये सभी पूजाएँ खास प्रसंगों पर की गई थी।

आगम सूत्रों के बाद भाष्य आदि व्याख्या साहित्य में भी स्नान आदि का निरूपण करते हुए यात्रोत्सव आदि सामूहिक प्रसंगों पर सर्वोपचारी पूजा एवं जिन स्नान की क्रिया होती थी।

वाचक प्रवर उमास्वाति ने प्रशमरति प्रकरण में पूजा विधान को गृहस्थ का सामान्य कर्तव्य बतलाया है, परन्तु उसमें स्नान-विलेपन आदि का सूचन नहीं है। इससे यह प्रमाणित होता है कि गृहस्थ जिन पूजा को नित्य कर्तव्य के रूप में अवश्य करता था किन्तु जल-विलेपन आदि से वह शून्य था।

मध्यवर्ती आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने ग्रन्थों में यद्यपि स्नान विलेपन आदि पूजा का उपदेश दिया है फिर भी पूजा विषयक दस ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थों में उन्होंने सर्वोपचारी पूजा का भी वर्णन किया है। उनके समय में अधिकतर त्रिकोपचारी, चतुष्कोपचारी, पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजाओं का ही प्रचलन

था। विक्रम की दशवीं-ग्यारहवीं शती तक नित्य स्नान एवं विलेपन नहीं होते थे। प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों में भी उत्सव समाप्ति तक नित्य सर्वोपचारी भक्ति होने के उल्लेख मिलते हैं।

आचार्य पादलिप्तसूरि लिखित प्रतिष्ठा पद्धति के अनुसार प्रतिमाह एक के हिसाब से वर्षभर में बारह–स्नपन करने चाहिए तथा वर्ष की समाप्ति पर आठ दिन तक उत्सव पूर्वक विशेष पूजा करनी चाहिए।

श्री चन्द्रसूरि कृत प्रतिष्ठा पद्धति में भी यही वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार प्रतिष्ठा सम्पन्न होने के पश्चात आठ दिनों तक अविछिन्न रूप से पूजा करनी चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसके बाद पूजा नित्य नहीं होती होगी।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि बारहवीं सदी तक नित्य पूजा का विधान नहीं था वरना आचार्य पादलिप्तसूरि आदि महीने में एक स्नान का उल्लेख नहीं करते। चौदहवीं शती तक के प्रतिष्ठा कल्पों में यही उल्लेख प्राप्त होते हैं। पन्द्रहवीं शती के प्रतिष्ठा कल्पों में **''द्वादश मासानं स्नात्रं कृत्वा''** का वर्णन प्राप्त होता है क्योंकि तब तक नित्य प्रक्षाल की रूढ़ परम्परा प्रविष्ट हो चुकी थी। वस्तुतः आगम प्रमाणों एवं मध्यकालीन प्रतिष्ठा विधियों से तो यही सिद्ध होता है कि उस समय तक नित्य प्रक्षाल नहीं होता था।

शंका– शुभ भावों में हेतुभूत मानकर यदि जल-पुष्प आदि के अर्पण से होने वाली हिंसा स्वीकृत कर सकते हैं तो फिर बकरे आदि की बलि को भी स्वीकृत करना चाहिए क्योंकि वह भी शुभ भावों की उत्पत्ति में हेतुभूत है?

समाधान– जल पूजा, पुष्प पूजा आदि के स्वीकार का अर्थ हिंसा की स्वीकृति नहीं है। इन द्रव्यों को उपलब्ध एवं प्रयोग करने की जो शास्त्रीय रीति है उसमें हिंसा का परिमाण नहींवत होता है। जैसे कि वैद्य के द्वारा दिया हुआ जहर भी औषधि के रूप में जीवन प्रदायक संजीवनी बूटी का कार्य करता है, परन्तु उसी जहर की मात्रा यदि एक चम्मच से एक कटोरी कर दी जाए तो वह प्राण घातक बन जाता है।

इसी प्रकार जल-पुष्प आदि में रही हुई सामान्य हिंसा को मान्य करने से बकरे जैसे पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा मान्य नहीं हो जाती। दूसरा तथ्य यह हैं कि

एक पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा के लिए जिन क्रूर भावों की आवश्यकता होती है उसमें शुभ भावों का होना असंभव है।

जल-पुष्प आदि एकेन्द्रिय जीवों में भावों को अभिव्यक्त करने अथवा प्रतिकार करने की शक्ति नहींवत होती है। अत: उनकी हिंसा में भाव इतने क्रूर नहीं बनते। वहीं बकरा एक पंचेन्द्रिय जीव है। मृत्यु की कल्पना मात्र से वह भयभीत हो जाता है। मृत्यु साधनों को सामने देखकर उनसे बचने का प्रयास करता है। चिल्लाता है, चिखता है। उस मार्मिक माहौल में भी यदि किसी के मन में करूणा के भावों की उत्पत्ति नहीं होती तो उसको धर्म कैसे माना जा सकता है?

तदुपरान्त जैन धर्म में द्रव्य पूजा को प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक नहीं माना गया है। वह तो मात्र उन गृहस्थों के लिए है जो पूरा दिन सांसारिक निमित्तों से जीव हिंसा में संलग्न रहते हैं। एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा कदम-कदम पर करते हैं। उसमें भी अच्छे निमित्त एवं भावों की शुद्धता के साथ उन जीवों की हिंसा के भाव मन में नहीं होते। इसी के साथ पूजा सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण विवेक एवं उपयोग भी रखा जाता है, इस कारण यह कार्य पाप के स्थान पर पुण्य बंध में हेतुभूत बनते हैं।

जिस व्यक्ति के एकेन्द्रिय जीव की हिंसा का भी त्याग हो, मन के परिणाम पूजा से बिगड़ते हो उनके लिए द्रव्य पूजा का भी निषेध शास्त्रों में प्राप्त होता है। इसीलिए साधु के लिए द्रव्य पूजा निषिद्ध है।

शंका– भक्ति के भावों से कर्म निर्जरा होती है, तब पत्थर की प्रतिमा को देखकर प्रभु भक्ति के भाव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

समाधान– यदि प्रतिमा को पत्थर मानकर पूजा की जाए तो प्रभु भक्ति के भाव कदापि उत्पन्न नहीं हो सकते। यह एक व्यवहारगत सत्य है कि जब तक हम किसी द्रव्य में अपनेपन या श्रद्धाभाव का आरोपण नहीं करते तब तक उसके प्रति कोई भाव उत्पन्न नहीं होते। जैसे हमारा राष्ट्रीय ध्वज अन्य देश वालों के लिए मात्र एक कपड़े का टुकड़ा है अत: उसके प्रति आदर, सम्मान या देशभक्ति के भाव उनमें नहीं उमड़ते। पर उसी तिरंगे को राष्ट्र ध्वज के रूप में सर्वोपरि स्थान देने वाले भारतीय लोग उसकी आन-बान-शान के लिए अपने प्राण भी खुशी से न्यौछावर कर देते हैं। जबकि वह एक निर्जीव वस्त्र का टुकड़ा

ही तो है। परन्तु उस तिरंगे में हमने राष्ट्र की गरिमा के भावों का आरोपण कर दिया इसलिए उसके प्रति हमारे भीतर आदर एवं सम्मान के भाव उत्पन्न होते हैं।

इसी तरह जिन प्रतिमा को पत्थर की मूर्ति मात्र न मानकर जब उसमें उपकारी भाव, तारक भाव का आरोपण करते हैं तब भक्तिभाव का स्फुरण स्वत: ही हो जाता है। श्रद्धा सम्पन्न श्रावक के लिए जिन प्रतिमा मात्र पत्थर की एक कलाकृति नहीं रह जाती अपितु उसके लिए वह साक्षात परमात्मा का कार्य करती है। इन्हीं शुभ भावों के आधार पर वह संसार से मुक्ति भी प्राप्तकर सकता है।

परमात्मा के मंदिर में जाने वाला सदा शुभ भावों में रहने का प्रयत्न करता है। विषय,कषाय,वासना आदि के भाव वहाँ आकर स्वत: शान्त हो जाते हैं। इसलिए भिखारियों की भीड़ भी मंदिरों के आगे लगती है। तेरापंथी आचार्य तुलसी ने कहा है कि– "मैं तो हमेशा जाता हूँ मंदिरों में। अनेक स्थानों पर प्रवचन भी किया है। आज भीनमाल में भी पार्श्वनाथ मंदिर में गया। स्तुति गाई। बहुत आनंद आया।"

यह सत्य तो अनुभव सिद्ध है अत: सब कुछ भावों पर आधारित हैं। (जैनभारती, अंक 16-17, पृ. 23)

शंका– परवर्तीकाल में प्रचलित सर्वोपचारी पूजा एवं महास्नात्र का विधान नित्य स्नान एवं अष्टप्रकारी पूजा तक ही सीमित रह गया ऐसा क्यों?

समाधान– जब नित्य स्नान का प्रचलन प्रारंभ हुआ था उस समय वह सत्रह भेदी पूजा, सर्वोपचारी पूजा या महास्नात्र के रूप में ही सम्पन्न किया जाता था, क्योंकि उसी में स्नान एवं विलेपन पूजा का उल्लेख मिलता था। परन्तु महास्नात्र में समय एवं द्रव्य के अधिक लगने से कम खर्च और कम समय में होने वाली लघु स्नात्र पूजाओं की उत्पत्ति हुई। आचार्यों ने महास्नात्रों का अनुकरण करते हुए लोकभाषा में लघु स्नात्र विधियों का निर्माण किया। पाँच अथवा सात बार कुसुमांजलि जिनबिंब पर चढ़ाकर कलश करने वाली लघु स्नात्र विधियों का प्रादुर्भाव लगभग चौदहवीं शती में हुआ होगा। सबसे प्राचीन जो लघु स्नात्र पूजा मिलती है वह देवपाल कवि कृत है एवं भाषा के आधार पर वह पन्द्रहवीं शती के बाद की रचना प्रतीत होती है। अत: अर्वाचीन काल के प्रारंभ में लघु स्नात्र का प्रचलन अधिक रहा होगा।

लघु स्नात्र यद्यपि अल्प व्यय साध्य थी परन्तु उनका सामान जुटाने एवं पढ़ाने वाले की आवश्यकता तो होती ही थी। इसीलिए कई छोटे स्थलों पर लघुस्नात्र करवाना भी अशक्य प्रतीत होता था। इसके अपवाद रूप में अनेक स्थानों पर मूर्तियों को स्नान करवाकर, चन्दन-केसर के द्वारा तिलक कर एवं पुष्प आदि द्रव्य चढ़ाकर अष्ट प्रकारी पूजा की परिपाटी प्रारंभ हुई होगी। इसी के साथ वर्तमान व्यस्त जीवन शैली के कारण लोगों में धर्म कार्यों के लिए अधिक समय व्यतीत करने की मानसिकता भी नहीं है। यही कारण है कि पूजा सम्बन्धी विधि-विधान अष्ट प्रकारी पूजा तक ही सीमित रह गए हैं।

शंका– आंगी एवं अलंकार पहनाने की विधि शास्त्रोक्त है या अर्वाचीन?

समाधान– वीतराग परमात्मा की राज्य अवस्था को प्रदर्शित करने हेतु शास्त्रों में आभरण पहनाने का विधान है। आगम सूत्रों में जहाँ देवों द्वारा पूजा करने का उल्लेख आता है, वहाँ भी आभरण चढ़ाने का उल्लेख मिलता है। परमात्मा की पिण्डस्थ अवस्था का चिंतन करते हुए राज्यावस्था के समय वस्त्र, आभूषण आदि चढ़ाए जाते हैं। परंतु वर्तमान में यह प्रवृत्ति अपेक्षाधिक बढ़ गयी है। कई स्थानों पर तो मात्र प्रक्षाल के समय ही आंगी आदि उतारी जाती है और पुनः चढ़ा दी जाती है। इस अति प्रवृत्ति के कई हानिकारक परिणाम भी सामने आ रहे हैं जैसे कि आजकल मंदिरों में चोरी के प्रसंग बढ़ते जा रहे हैं। इस कारण कई बार मूर्तियाँ खंडित हो जाती है। जो कार्य कभी-कभी हो उसमें लोगों की रुचि अधिक होती है तथा वह मन को आनंदित भी करती है। परन्तु रोज-रोज अंग रचना होने से परमात्मा का मूल वैराग्य उत्पादक स्वरूप गौण हो जाता है। अतः अंगरचना, अलंकार आदि चढ़ाना शास्त्रोक्त है तथा पर्व दिनों में आंगी होनी भी चाहिए किन्तु उसकी अति प्रवृत्ति सर्वतः अनुचित है। इससे परमात्मा की पिण्डस्थ, पदस्थ एवं रूपातीत अवस्था का चिंतन सम्यक प्रकार से नहीं हो सकता।

शंका– दीपक पूजा क्यों की जाती है? तथा दीपक घी का होना चाहिए या तेल का?

समाधान– मंदिर में दीपक की रोशनी दो कारणों से की जाती है– 1. परमात्मा की दीपक पूजा करने के लिए और 2. मंदिर में प्रकाश करने के

लिए। कुछ लोग मानते हैं कि दीपक पूजा मात्र प्रकाश हेतु की जाती है परंतु आवश्यक चूर्णि के अनुसार तीर्थंकरों की दीपक पूजा कर्तव्य के रूप में करनी चाहिए। उन्होंने सिंहासन, छत्र, चामर आदि के साथ तैल समुद्गक का उल्लेख किया है, जहाँ उनका तात्पर्य दीपक पूजा से ही है। अत: यह एक शास्त्रोक्त विधान है।

आचरण शतक के अनुसार पूर्व काल में तेल के दीपक किए जाते थे। पंचोपचारी, अष्टोपचारी एवं सर्वोपचारी पूजा के अन्तर्गत दीपक का उल्लेख दीपक पूजा की अपेक्षा से ही किया गया है।

गणि कल्याणविजयजी के अनुसार देवों द्वारा कृत सिद्धायतनों की पूजा में दीपक पूजा का उल्लेख नहीं है क्योंकि दीपक प्रकाश के लिए किया जाता है और देवलोक में सतत प्रकाश रहता ही है तथा आरती भी दृष्टि दोष के निवारण के लिए की जाती है और देवताओं में दृष्टि दोष नहीं होता है।

शंका– अष्टोपचारी पूजा में प्रयुक्त गंध शब्द का तात्पर्य क्या है तथा विलेपन वास और गंध में क्या अंतर है?

समाधान– घिसे हुए केसर या चंदन के लिए शास्त्रों में 'विलेपन' अथवा 'चंदनरस' शब्द का उल्लेख मिलता है। बरास मिश्रित चंदन चूर्ण को 'वास' कहते हैं और प्रतिष्ठा कल्पों के अनुसार 'वासा: श्वेतवर्णा:' वास श्वेत होती है। वर्तमान में इसे वासक्षेप कहा जाता है। गंध का लक्षण बताते हुए आचार्य कहते हैं– "वासा एव ईषत् कृष्ण गंधा:" गंध, चंदन, अगरू, कस्तूरी, बरास, शिलारस आदि सुगंधित पदार्थों से निर्मित चूर्ण गंध कहलाता है। यह धूप के रूप में प्रयुक्त होता है।

पूर्वकाल में विलेपन पूजा एवं वास पूजा सर्वांग पर की जाती थी वहीं वर्तमान में दोनों ही पूजाएँ नवांग पर की जाती है।

शंका–जिनपूजा में आए परिवर्तनों के वर्तमान में क्या प्रभाव परिलक्षित होते हैं?

समाधान– प्राचीन काल से अब तक जिनपूजा में आए परिवर्तनों के विषय में चिंतन किया जाए तो इसके कुछ अच्छे और कुछ बुरे दोनों ही प्रकार के परिणाम परिलक्षित होते हैं। वर्तमान जीवनशैली एवं विषम मानसिकता के कारण पूजा-विधानों की नियमबद्धता एवं नित्यता आवश्यक है। परंतु कई लोग

ऐसे हैं जिन्हें इन क्रिया-कलापों की नित्यता बंधन रूप लगती है। गृहस्थ वर्ग ने अपनी बढ़ती हुई व्यस्तता के कारण मंदिरों के समस्त कार्य पूजारियों के हस्तगत कर दिए हैं। परन्तु वेतनभोगी पूजारियों के भरोसे मंदिरों में आशातनाएँ बढ़ रही है और इसी कारण मंदिरों के प्रभाव में न्यूनता आ रही है।

कर्मचारियों की वृद्धि के कारण देवद्रव्य आदि की वृद्धि हेतु बोलियों का प्रचलन बढ़ गया है, जिसके कारण युवावर्ग एवं आम जनता के मन में जिनधर्म के प्रति उपेक्षा भाव बढ़ रहे हैं।

अपनी सुविधा के अनुसार पूजा-प्रक्षाल आदि का समय बदलते-बदलते आजकल कई स्थानों पर सूर्योदय से पूर्व ही प्रक्षाल होने लगा है, जबकि सूर्योदय से पहले मंदिर खोलना भी शास्त्र सम्मत नहीं है। इसी के साथ न्हवण जल के विसर्जन आदि के सम्बन्ध में भी असावधानियाँ बढ़ती जा रही है। जिस कारण आराधना के स्थान पर विराधना ही अधिक हो रही है।

आंगी के बढ़ते प्रचलन के साथ-साथ मंदिरों में चोरियाँ भी बढ़ रही है। जिनेश्वर परमात्मा के मूल वीतरागी स्वरूप के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं और इस कारण दर्शनार्थियों के मन में भी संसार के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्न नहीं होते।

नित्य विलेपन में प्रयुक्त होते सिंथेटिक केशर, चंदन आदि के कारण आज मूर्तियों पर इसके दुष्प्रभाव परिलक्षित हो रहे हैं। मूर्तियाँ काली और दागयुक्त हो रही हैं। इसी के साथ प्रयुक्त हो रहे द्रव्य की गुणवत्ता और संख्या दोनों में भी गिरावट आ गई है।

तत्त्वत: आज की सम्पूर्णतया भौतिक जीवन शैली में मंदिर दर्शन और जिनपूजन की नित्यता ने ही लोगों को धर्म मार्ग से जोड़कर रखा है। अतिव्यस्तता में दस मिनट के लिए किया गया परमात्म दर्शन पूरा दिन हमारी Battery को Positive Energy से Charged रखता है और Tension, Temperment आदि से Free रखता है।

इस प्रकार आज के युग में नित्यदर्शन आवश्यक है पर जहाँ पर विधानों में अति हो रही है जिनाज्ञा के विपरीत कार्य हो रहे हैं वहाँ पर श्रावक वर्ग का सावधान होना अत्यावश्यक है।

शंका– जीवन निर्वाह के लिए हिंसा करना गृहस्थ का आवश्यक क्रम है परंतु कर्म निर्जरा हेतु हिंसा करना कहाँ तक उचित है?

समाधान– जीव की प्रत्येक प्रवृत्ति में हिंसा निश्चित है। सांसारिक कार्यों के लिए मोह भावों से युक्त होकर की गई प्रवृत्तियाँ कर्म बन्धन का कारण बनती है। वहीं धार्मिक कार्यों में की गई प्रवृत्ति शुभ भावों से योजित होने के कारण कर्म निर्जरा का कारण बनती है, क्योंकि जैन धर्म में क्रिया की अपेक्षा भावों को प्रमुखता दी गई है। जीवन निर्वाह के लिए की गई हिंसा जहाँ पाप कहलाती है वहीं पूजा-भक्ति आदि के लिए कृत हिंसा में अन्य अनेक सावद्य कार्यों का त्याग हो जाने एवं अशुभ से शुभ की ओर प्रवृत्ति होने से वही कार्य धर्म कहलाता है। क्योंकि भविष्य में यह क्रिया विराट पुण्योदय में हेतुभूत बनती हैं।

जिस प्रकार गृह कार्यों हेतु किया गया खर्च, खर्च कहलाता है लेकिन वही खर्च यदि दुकान चलाने के लिए किया जाए तो Investment कहलाता है। क्योंकि जितना पैसा Invest किया जाता है उससे कई गुणा अधिक द्रव्य वापस मिलता है।

शंका– यदि दो-चार पुष्प चढ़ाने से पुष्प पूजा हो सकती है तो फिर सैकड़ों पुष्प एवं उनकी माला चढ़ाना अविवेक नहीं है?

समाधान– यह सब भाव जगत पर आधारित तथ्य है। साधर्मिक भक्ति करनी हो तो दाल-रोटी से भी हो सकती है तो फिर उसके लिए विविध पकवानों का निर्माण क्यों? जयणा तो साधर्मिक भक्ति में भी आवश्यक है न? यथार्थ तथ्य यह है कि जहाँ पर शुभ भावों की उत्पत्ति का लाभ हो वहाँ पर हिंसा दोष रूप नहीं होती। दो-चार फूलों से भक्ति-भाव उत्पन्न होते हैं तो अधिक फूलों से अधिक भाव ही उत्पन्न होंगे। परन्तु हर कार्य विवेक पूर्वक एवं शास्त्रोक्त रीति से होना आवश्यक है। सर्वप्रथम परमात्मभक्ति तो स्वद्रव्य से होनी चाहिए। जिन मंदिर में यदि पुष्प आदि की सुविधा उपलब्ध भी हो, तो भी पूजा करने वालों को अन्य पूजार्थियों को ध्यान में रखकर एवं मूल्य देकर वस्तु का उपयोग करना चाहिए।

साधु-साध्वियों को वंदन करने में गमनागमन आदि की हिंसा का दोष तो लगता ही है और वंदन क्रिया में भी क्रिया करने सम्बन्धी हिंसा होती है फिर भी वह हिंसा नगण्य मानी जाती है एवं उपस्थित किसी एक मुनि को नहीं समस्त मुनिवृन्द को वंदन करने का प्रयास किया जाता है। वस्तुतः सामग्री की संख्या में नहीं अपितु उसके प्रयोग आदि में विवेक रखा जाना चाहिए। सामग्री का

उपयोग अल्प रूप में करना विवेक नहीं है वह तो कंजूसी है अतः फूलों की संख्या कम करना विवेक नहीं है अपितु फूलों की माला आदि बनाने में सुई द्वारा उनका छेदन नहीं करवाना उन्हें योग्य स्थान पर निर्माल्य के रूप में परिष्ठापित करना योग्य रीति से उनकी प्राप्ति करना जयणा है।

शंका– तीर्थ आदि के पट्ट या फोटो का अभिषेक न हो तब तक उनकी वासक्षेप पूजा करनी चाहिए या नहीं?

समाधान– अठारह अभिषेक करने के बाद तीर्थपट्ट आदि की पूजा करनी चाहिए। यदि कारण विशेष से पहले पूजा करनी हो तो तीन नवकार मंत्र गिनकर उनकी स्थापना करें। फिर वासक्षेप पूजा चैत्यवंदन आदि कर सकते हैं।

शंका– जिनपूजा करने के बाद प्रातःकालीन प्रतिक्रमण हो सकता है?

समाधान– उत्सर्ग मार्ग से प्रतिक्रमण पहले और जिनपूजा बाद में होती है। परिस्थिति विशेष में अपवादतः ऐसा कर सकते हैं। सामान्यतया मध्याह्न 12 बजे तक प्रतिक्रमण किया जा सकता है।

शंका– भगवान की पूजा किस अंगुली से और क्यों की जाती है

समाधान– वीतराग परमात्मा एवं पूज्यजनों की पूजा अनामिका अंगुली से करनी चाहिए। अनामिका को श्रेष्ठ अंगुली माना गया है। अनामिका का प्रवाह सीधे हृदय की तरफ जाता है इससे हृदय के भावों की शुद्धि होती है। हमारी अंगुली जब प्रतिमा को स्पर्श करती है तो जिनबिम्ब की सकारात्मक ऊर्जा (Positive Energy) हमारे भीतर की नकारात्मक ऊर्जा (Negative Energy) को भी सकारात्मक बना देती है। वह Negative एवं Positive Energy मिलकर प्रचंड ऊर्जा का निर्माण हमारे भीतर करती है।

तर्जनी अंगुली का प्रयोग तिरस्कार हेतु किया जाता है। मध्यमा अंगुली सबमें बड़ी होने के कारण अहंकार आदि के भाव जागृत करती है। तीसरी अंगुली का नाम अनामिका है। वीतराग भगवान अनामी है अतः अनामिका अंगुली से उनकी पूजा की जाती है।

शंका– वीतराग परमात्मा को द्रव्य की आवश्यकता नहीं है फिर उनकी द्रव्य पूजा क्यों की जाए?

समाधान– वीतराग परमात्मा को द्रव्य की आवश्यकता नहीं है यह एक सत्य तथ्य है। इसी प्रकार परमात्मा को तो स्तुति, गुणगान या नाम स्मरण की भी आवश्यकता नहीं है फिर भी हम करते हैं, क्योंकि गुणीजनों के गुणानुमोदन

से हमारे भीतर भी उन गुणों का सिंचन होता है तथा स्तुति, भजन आदि से हमारा मन परमात्म भक्ति में तल्लीन हो जाता है।

कुछ लोग तर्क दे सकते हैं कि जब नामस्मरण या गुणस्तवना के द्वारा तल्लीनता आ सकती है तो फिर द्रव्य पूजा की क्या आवश्यकता? किसी अपेक्षा से यह बात सही है किन्तु मनुष्य मन की चंचलता से सभी परिचित है। मनुष्य का मन एक स्थान पर अधिक समय तक एकाग्र नहीं रह सकता उसे विविधता चाहिए। द्रव्यपूजा के भिन्न-भिन्न विधानों से मन को परमात्म भक्ति हेतु विविध आलम्बन मिल जाते हैं। इससे सांसारिक द्रव्यों के प्रति रही आसक्ति न्यून हो जाती है और द्रव्य का भी सदुपयोग होता है। द्रव्यपूजा के माध्यम से भाव पूजा हेतु भूमिका का निर्माण होता है अत: द्रव्यपूजा अवश्य करनी चाहिए।

शंका– पूजा में धर्म और लाभ दोनों है किन्तु उसमें आंशिक हिंसा भी है, जबकि सामायिक में केवल लाभ ही है दोष नहीं। तो फिर अधिक से अधिक सामायिक ही करनी चाहिए?

समाधान– यदि अनुकूलता एवं सामर्थ्य हो तो श्रावक को अधिक से अधिक सामायिक ही नहीं अपितु आजीवन के लिए सामायिक ले लेनी चाहिए। परंतु जहाँ तक आंशिक हिंसा का सवाल है तो वह प्रत्येक कार्य में समाहित है। चाहे फिर वह प्रवचन श्रवण हो, स्थानक निर्माण हो या गुरु वंदन, सभी में आंशिक हिंसा रही हुई है, पर यह तर्क मात्र जिनपूजा के विरोध में ही दिया जाता है। वस्तुत: जिसकी जिस क्षेत्र में अधिक रुचि एवं मानसिक स्थिरता हो उसे तदनुरूप कार्य करना चाहिए। पर किसी एक कार्य को मुख्य करके दूसरी क्रिया को गौण करना सर्वथा अनुचित है। जैसे कि स्कूल में अनेक विषय पढ़ाए जाते हैं, विद्यार्थी को जिस विषय में आगे बढ़ना हो या कोई कोर्स करना हो तो उस पर विशेष ध्यान देना ठीक है पर यदि उसी विषय को मुख्य करके शेष विषयों की पढ़ाई ही न की जाए तो चल सकता है? यदि नहीं तो फिर धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में यह कैसे मान्य हो सकता है?

शंका– भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर साँप के फण क्यों होते हैं? क्या इनकी भी पूजा होती है?

समाधान– भगवान पार्श्वनाथ जब दीक्षा लेने के बाद विचरण कर रहे थे उस समय धरणेन्द्र देव ने परमात्मा द्वारा कृत उपकारों का स्मरण कर प्रभु भक्ति

के भाव से उनके मस्तक पर फण फैलाए थे। कमठ के द्वारा किए गए अतिवृष्टि उपसर्ग में भी परमात्मा के मस्तक पर धरणेन्द्र-पद्मावती के द्वारा छत्र बनाया गया, जिस कारण अहिच्छत्रा तीर्थ की स्थापना हुई। इन्हीं प्रसंगों की स्मृति निमित्त पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा फणों से सुशोभित की जाती है। बिना फण की प्रतिमाएँ भी प्राप्त होती है। अत: फणों की अलग से पूजा करने का कोई विधान नहीं है। यदि कोई आंगी में शोभा आदि के प्रयोजन से तिलक करें तो कोई दोष भी नहीं है। फणों की शोभा हेतु प्रयुक्त केशर का प्रयोग अन्य तीर्थंकर परमात्मा की पूजा हेतु भी किया जा सकता है।

शंका– श्रावक जिनेश्वर परमात्मा की पूजा क्यों करें?

समाधान– अरिहंत परमात्मा ने ही सर्व दु:ख मुक्ति एवं शाश्वत सुख प्राप्ति हेतु जिनधर्म की स्थापना की है। जो इसे धारण करता है वह श्रावक कहलाता है। उपकारियों की पूजा करना कृतज्ञ व्यक्ति का परम कर्तव्य एवं लक्षण है अत: श्रावक को परमोपकारी तीर्थंकर परमात्मा की पूजा अवश्य करनी चाहिए।

शंका– तीर्थंकर परमात्मा तो साधु-साध्वीजी के भी परम उपकारी है तो फिर वे परमात्मा की पूजा क्यों नहीं करते?

समाधान– द्रव्य दृष्टि से साधु-साध्वी जिनेश्वर परमात्मा की पूजा नहीं करते क्योंकि उनके पास स्व अधिकार युक्त कोई द्रव्य होता ही नहीं, अत: द्रव्य समर्पण के रूप में पूजा करने के वे अधिकारी नहीं है। परंतु जिनाज्ञा के पालन के रूप में वे परमात्मा की उत्कृष्ट भावपूजा करते हैं। आनंदघनजी महाराज सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में जिन आज्ञा पालन को परमात्मा की मुख्य पूजा बताते हैं।

शंका– जिनपूजा, स्नात्रपूजा, बड़ी पूजा, महापूजन आदि में साधु-साध्वी या पौषधधारी श्रावक जा सकते हैं?

समाधान– जिनपूजा, स्नात्रपूजा, महापूजन आदि में साधु-साध्वी द्वारा दर्शन करने या निश्रा प्रदान करने सम्बन्धित कोई शास्त्रोक्त निषेध प्राप्त नहीं होता। प्राचीन धर्मग्रन्थों में श्रावक वर्ग की भावोल्लास वृद्धि हेतु एवं स्वयं के सम्यगदर्शन आदि गुणों की विशुद्धि हेतु पूजन आदि विधानों में जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। श्राद्धदिनकृत्य एवं कथारत्नकोष इस विषय में दृष्टव्य है।

शंका– सर्व सावद्य योग के त्यागी मुनि भगवंतों द्वारा द्रव्यस्तव करने का निषेध है तो फिर वे पूजन आदि में कैसे आ सकते हैं?

समाधान– साधु-साध्वी भगवंतों के लिए द्रव्यस्तव का निषेध है, परंतु उपदेश आदि के द्वारा द्रव्य पूजा करवाने अथवा उसकी अनुमोदना करने का कोई निषेध नहीं है। प्रतिमाशतक, स्तव परिज्ञा आदि में इस विषय सम्बन्धी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

शंका– सर्व सावद्य कार्यों से विरत साधु-साध्वी यदि जिनपूजा हेतु प्रेरित करें तो तत्सम्बन्धी हिंसा का दोष साधु को लगता है या नहीं?

समाधान– मुनि भगवंत श्रावकों को जिनपूजा आदि की प्रेरणा उनकी आध्यात्मिक जागृति, भावनात्मक उन्नति, संयम विरति एवं सुप्रशस्त कार्यों में प्रवृत्ति करवाने के उद्देश्य से देते हैं। यदि जिनपूजा आदि के उपदेश में सावद्य की प्रेरणा देने का दोष लगता हो तो तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा देश विरति, सम्यक्त्व आचार, मार्गानुसारिता एवं श्रावक धर्म आदि का उपदेश देने में भी उन्हें इसी प्रकार के दोष लगते, पर ऐसा नहीं है। ये कार्य गृहस्थ को अन्य पाप कार्यों में प्रवृत्त होने से रोकते हैं। गजसुकुमाल को नेमिनाथ भगवान ने श्मशान में साधना की आज्ञा दी थी इसका यह अभिप्राय नहीं की उनके शिरज्वलन और देहान्त के दोषी वे थे।

शंका– साधु-साध्वी न्हवण जल लगा सकते हैं?

समाधान– यदि कोई श्रावक-श्राविका श्रद्धा भाव पूर्वक किसी महातीर्थ या शांति स्नात्र आदि का न्हवण जल लेकर आते है तो साधु-साध्वी उसका अनादर न करें किन्तु प्रक्षाल हुए दो घड़ी (48 मिनट) का समय बीत गया हो यह उपयोग अवश्य रखें। यदि किसी अन्य तीर्थ का न्हवण हो तो उसमें उचित मात्रा में कपूर या बरास आदि मिले हुए हों तो साधु-साध्वी उसे तीन दिन तक लगा सकते हैं। तीन दिन के बाद उसमें भी जीवोत्पत्ति होने की संभावना रहती है अत: इससे अधिक समय के बाद उसे नहीं रखना चाहिए।

शंका– जिनपूजा भक्ति स्वरूप होने से इसमें विराधना नहीं है तो फिर पंच महाव्रतधारी साधु द्रव्यपूजा क्यों नहीं करते?

समाधान– साधुओं के द्वारा द्रव्य पूजा नहीं करने का कारण उसमें रहीं हुई हिंसा वृत्ति नहीं है। साधु तो द्रव्य के त्यागी होते हैं और बिना द्रव्य के द्रव्य

पूजा संभव नहीं है। द्रव्य पूजा का अधिकारी द्रव्य धारण करने वाला होता है। साधु स्नान नहीं करते द्रव्य पूजा के लिए स्नान करना आवश्यक है अत: द्रव्य पूजा का कार्य साधुओं की प्रतिज्ञा के विरुद्ध होने से वे उसे नहीं करते। द्रव्य पूजा आरंभ एवं परिग्रह रोग से पीड़ित आत्माओं के लिए आवश्यक है। साधु आरंभ एवं परिग्रह से मुक्त होने के कारण द्रव्यपूजा उनके लिए आवश्यक नहीं है।

शंका– दक्षिण एवं उत्तरी ध्रुव पर कई ऐसे स्थान हैं जहाँ छह महीने रात एवं छह महीने दिन रहता है वहाँ पर नवकारसी, चौविहार आदि के प्रत्याख्यान किस प्रकार करना चाहिए?

समाधान– जहाँ पर महीनों तक दिन और रात रहते है वहाँ पर अद्धा पच्चक्खाण संभव नहीं होता ऐसी जगहो पर गंठसी, मुट्ठसी आदि घंटे के पच्चक्खाण किए जा सकते हैं जैसे कि बारह घंटे भोजन-पानी का त्याग आदि।

●

अध्याय-4

द्रव्य पूजा में हिंसा का प्राधान्य या अहिंसा का?

शंका– जब भाव जगत द्रव्य के आश्रित नहीं है, तो फिर भाव में प्रवेश करने हेतु द्रव्य की क्या आवश्यकता?

समाधान– परमात्मा के समक्ष जो भी क्रियाएँ होती है उन सब विधानों का एक ही हेतु है– आत्मा में उपशम भाव की प्राप्ति। परमात्मा के दर्शन से आत्म स्वरूप का स्मरण हो सकें राग से वैराग्य की ओर हमारा प्रयाण हो सकें तथा परमात्मा के स्वरूप एवं आत्म स्वरूप में भेद कर सकें इसीलिए परमात्मा के अंग स्पर्श और पूजन का विधान है। इन धर्म क्रियाओं द्वारा हमें परमात्म स्वरूप का स्मरण एवं भान होता है।

जिस प्रकार नक्शे को देखकर सम्पूर्ण भूगोल का स्मरण हो जाता है उसी प्रकार वीतराग की मूर्ति को देखकर ही वीतरागता का आभास एवं प्रकटीकरण हो जाता है। मूर्ति के समक्ष बैठकर एवं प्रभु गुणों को याद करके उन गुणों का ध्यान किया जाए तो साक्षात अरिहंत परमात्मा का आभास होने लगता है। इस तरह शुद्ध द्रव्य शुद्ध भाव में हेतुभूत बनता है। द्रव्य में तल्लीन होकर ही भावमय बना जा सकता है अत: भावों को उत्पन्न करने के लिए द्रव्य आवश्यक है और भाव आने के बाद द्रव्य स्वत: छूट जाता है। जैसे जब तक गिनती याद ना हो तब तक पुस्तक की आवश्यकता होती है, परन्तु याद होने के बाद उसके सहारे की आवश्यकता नहीं रहती। वैसे ही वीतराग भाव की प्राप्ति हेतु वीतराग मूर्ति के पूजन, आलंबन आदि की आवश्यकता होती है। वीतराग भाव की प्राप्ति के बाद नहीं।

शंका– स्वद्रव्य के अभाव में श्रावकों को क्या करना चाहिए?

समाधान– स्वयं के द्रव्य से पूजा करने पर भावों की वृद्धि होती है। शास्त्रों में वर्णन आता है कि सुविधाओं के अभाव में यदि कोई श्रावक संघ की सामग्री से द्रव्य पूजा करता है तो भी उसे सदा स्वद्रव्य से पूजा करने के भाव

रखने चाहिए। आर्थिक दृष्टि से विपन्न श्रावकों को घर पर सामायिक की आराधना करनी चाहिए। यदि संभव हो तो अष्टप्रकारी पूजा में से प्रतिदिन अक्षत पूजा करनी ही चाहिए तथा अन्य श्रावकों को यथासंभव सहयोग देना चाहिए।

शंका– परमात्मा की भक्ति के निमित्त किस तरह के स्तुति-स्तोत्र बोलने चाहिए?

समाधान– परमात्म भक्ति निमित्त वीतराग परमात्मा के १००८ लक्षण वाली गंभीर, सूक्ष्म, भक्ति भाव से पुरित, छंद-अलंकार आदि से युक्त, वैराग्य वर्धक, उत्तम भावों से गर्भित, पुण्यबंध एवं पापक्षय में सहायक, प्रज्ञाशील आत्मार्थी साधकों द्वारा रचित स्तुति-स्तोत्र से शुद्धोच्चारण पूर्वक परमात्म भक्ति करनी चाहिए। इनसे हमारे भावों की विशेष विशुद्धि होती है।

शंका– परमात्मा की स्तुति, स्तवना आदि क्यों करनी चाहिए?

समाधान– परमात्मा की स्तुति स्तवना आदि करने से दर्शन-ज्ञान-चारित्र सम्यक बनते हैं और बोधि लाभ की प्राप्ति होती है। पापों का प्रक्षालन होता है और आत्मा कषायों से निर्मल बनती है।

शंका– भगवान की आरती एवं मंगलदीपक का विधान किस आगम में प्राप्त होता है।

समाधान– भगवती सूत्र की चूर्णि में प्रभु की आरती एवं मंगल दीपक का विधान प्राप्त होता है।

शंका– अरिहंत परमात्मा के आगे अष्टमंगल रचने अथवा अष्टमंगल पट्ट की पूजा करने का विधान आगमोक्त है?

समाधान– भगवान के आगे अष्टमंगल बनाने का विधान 'जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति' नामक आगम में प्राप्त होता है। परमात्मा के समक्ष सोना-चाँदी-रत्न आदि से निमित्त चावल अथवा शुद्ध अक्षत के द्वारा अष्ट मंगल आकृति बनानी चाहिए। अष्ट मंगल पट्ट की पूजा नहीं होती है। जिन लोगों को अष्ट मंगल की आकृति बनानी नहीं आती उनके लिए पट्ट आदि बनवाकर चढ़ाने या उस पर चावल द्वारा आकृति बनाने हेतु पट्ट परम्परा प्रारंभ हुई होगी। शांतिस्नात्रादि विशिष्ट विधानों में अलग से अष्ट मंगल पट्ट स्वतन्त्र रूप पूजन की विधि होती है। अष्टमंगल की आकृतियाँ मंगल की सूचक मानी गई है।

शंका– मिट्टी से बनी प्रतिमा की पूजा हो सकती है? इसकी पूजा विधि

क्या है तथा इसका शास्त्रीय उल्लेख कहाँ प्राप्त होता है।

समाधान– मिट्टी से बनी हुई प्रतिमाजी की पूजा की जा सकती है, किन्तु उनकी प्रक्षाल अर्थात जल पूजा आदि नहीं करना चाहिए। चैत्यवंदन महाभाष्य, श्राद्ध विधि आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। जल पूजा, चंदन पूजा आदि से इनके विखंडित होने का भय एवं संभावना रहती है। वर्तमान में इन प्रतिमाओं का प्रचलन नहीं है।

शंका– जिन प्रतिमा का प्रक्षाल करते समय वालाकुंची का प्रयोग करना शास्त्रीय है? इसका कोई विकल्प है या नहीं?

समाधान– प्रतिमा का प्रक्षाल करने के पश्चात जरूरी साफ-सफाई हेतु वालाकुंची उपयोग करने का विधान शास्त्रीय है। परंतु इसके उपयोग में विवेक रखना अत्यावश्यक है। इसे हाथ में लेकर बर्तनों की भाँति फटाफट सफाई करने की अपेक्षा आँख में गए हुए कचरे को या दाँत में फँसे हुए कण को निकालने में जितनी सावधानी और कोमलता रखी जाती है उससे भी अधिक सतर्कता एवं बहुमान पूर्वक प्रतिमा पर लगे हुए चंदन-केसर आदि निर्माल्य दूर करने चाहिए।

मुलायम एवं पतले अंगलूंछण वस्त्र को पानी में भीगाकर बार-बार उसके द्वारा प्रतिमा को साफ करके भी बासी केसर को उतारा जा सकता है। तदनंतर आवश्यकता हो तो कुशलता पूर्वक वालाकुंची का प्रयोग करना चाहिए। अन्यथा यही आराधना के हेतु विराधना के कारण बन जाते हैं।

शंका– प्रक्षाल हेतु कौनसे जल का प्रयोग करना चाहिए?

समाधान– शास्त्रोक्त वर्णन के अनुसार तीर्थों का जल, नदी-सरोवर, द्रह-कुंड-कुएँ आदि का शुद्ध जल, टंकी में संग्रहीत वर्षा आदि का जल प्रक्षाल हेतु शुद्ध माने गए हैं। रसायन, मशीन आदि से शुद्ध किए हुए जल एवं क्षार तत्त्वादि से युक्त जल का उपयोग प्रक्षाल हेतु नहीं करना चाहिए। पूजा में उपयोगी जल को बिल्कुल जयणा पूर्वक गलना आदि से छानकर ही काम में लेना चाहिए।

शंका– जिनेश्वर परमात्मा की द्रव्य पूजा क्यों करनी चाहिए?

समाधान– महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने प्रतिमाशतक ग्रंथ में द्रव्य पूजा के पाँच लाभ बताये हैं–

1. धन संपत्ति की तृष्णा का क्षय होने से अपरिग्रह व्रत दृढ़ होता है।

2. दान देने से धर्म का अभ्युदय होता है।

3. सद्धर्म में पुरुषार्थ करने से अशुभ आरंभ की परम्परा नष्ट होती है।

4. चैत्य दर्शनार्थ आये हुए सुविहित साधुओं के दर्शन एवं धर्म श्रवण का अमृत योग प्राप्त होता है।

5. परमात्मा के मुखकमल के दर्शन से आत्म स्वरूप का भान होता है।

इसी के साथ चतुर्विध संघ का मिलन, परस्पर आराधना विषयक पृच्छा, नृत्य गान संगीत आदि के द्वारा परमात्मा के गुणों का उत्कीर्तन, तीर्थंकर नाम कर्म की प्राप्ति आदि अनेक लाभ होते हैं। इसीलिए द्रव्य के अधिकारी साधकों को आशय शुद्धि एवं जयणापूर्वक जिनपूजा आदि कृत्य करने ही चाहिए।

शंका– निर्माल्य पुष्पों का विसर्जन कहाँ करना चाहिए?

समाधान– ठंडक और सुगंध के कारण कई बार कुंथुआ आदि सूक्ष्म जीव फुलों में आश्रय ले लेते हैं। ऐसे पुष्प यदि न्हवण जल या नदी आदि में डाल दिए जाएं तो जीव विराधना की संभावना रहती है। अतः पुष्पों को छाया में ऐसे स्थान पर सुखाना चाहिए जहाँ किसी के पैर आदि नहीं आते हो।

शंका– परमात्मा के नव अंग की पूजा करनी चाहिए या एक अंग की?

समाधान– उत्सर्गतः परमात्मा के नव अंग की पूजा करनी चाहिए। परंतु कारण विशेष में समयाभाव हो अथवा पूजा की लम्बी कतार होने पर एक अंग की पूजा भी मान्य है। वर्तमान में शत्रुंजय, शंखेश्वर आदि तीर्थों में परमात्मा के चरण की ही पूजा करवाई जाती है। इन परिस्थितियों में व्यवस्था अनुसार संतोष करना ही उत्तम है। स्तवपरिज्ञा एवं प्रतिमाशतक में स्पष्ट उल्लेख है कि **"सर्वपूजाऽभावे देवता पूजा ज्ञातेन देवतादेश-पादादिपूजोदा हरणेन देशगत-क्रियामपि देशिपरिणामवद्।"**

भावार्थ– पूर्ण पूजा के अभाव में अथवा जब पूजा न हो सके तब देव के एक भाग रूप पैर आदि की पूजा से आंशिक क्रिया में पूर्ण देव पूजा मान लेना चाहिए।

अतः यह कहा जा सकता है कि संयोगवश नवांगी पूजा के स्थान पर एक अंग की पूजा भी मान्य है, परंतु इसमें नव अंग पूजा का विरोध या एक अंग की पूजा का समर्थन नहीं है।

शंका– एक बार मंदिर में चढ़ाए गए बादाम, श्रीफल आदि को दुबारा मंदिर में चढ़ा सकते हैं?

समाधान– मंदिर में चढ़ाए गए बादाम, श्रीफल, नैवेद्य, चावल आदि निर्माल्य द्रव्य कहे जाते हैं। जो वस्तु एक बार निर्माल्य बन जाए उसे पुनः चढ़ाया नहीं जा सकता। परमात्म भक्ति हेतु हमेशा ताजा नैवेद्य एवं फल आदि चढ़ाना चाहिए। अतः एक बार चढ़ाए गए बादाम, श्रीफल आदि दुबारा नहीं चढ़ा सकते हैं।

शंका– बीसस्थानक या नवपद गट्टा की पूजा करने के पश्चात अरिहंत परमात्मा की पूजा कर सकते हैं?

समाधान– बीसस्थानक या नवपद यंत्र की पूजा करने के बाद अरिहंत परमात्मा की पूजा कर सकते हैं क्योंकि इस यंत्र में किसी व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु पदों की पूजा है। जब हम एक नवपद यंत्र की पूजा करने के पश्चात दूसरे नवपद यंत्र की पूजा कर सकते हैं, जबकि उसमें भी अरिहंत है तब अरिहंत प्रतिमा की क्यों नहीं। अतः इनकी पूजा के बाद जिन प्रतिमा की पूजा करने में कोई बाधा नहीं है।

का– भगवान की पूजा करने के बाद लंछन की पूजा भी करनी चाहिए?

समाधान– लंछन अर्थात चिह्न। इसके द्वारा यह जाना जाता है कि यह कौन से भगवान की प्रतिमा है। परन्तु उसकी पूजा करने का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता अतः लंछन की पूजा नहीं होती।

शंका– सम्पूर्ण रूप से स्वद्रव्य का प्रयोग कैसे करें? चंदन घिसने हेतु चौरस एवं जल तो मंदिर का ही उपयोग में लेना पड़ता है?

समाधान– मंदिर के चौरस एवं जल आदि का प्रयोग करते हों तो उसका समुचित नकरा मंदिर में जमा कर देने पर देव द्रव्य का दोष नहीं लगता। ऐसी पूजा स्वद्रव्य कृत पूजा ही कहलाती है।

शंका– बरास पूजा के बाद अंगलूंछण करना जरूरी है?

समाधान– वस्तुतः बरास पूजा चंदन पूजा का ही एक अंग है। यह प्रतिमा की सुंदरता एवं शोभा की वृद्धि हेतु की जाती है पर अंगलूंछण द्वारा साफ करने का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। अतः बरास पूजा के बाद अंगलुंछण क्रिया आवश्यक नहीं है।

शंका— प्रतिमा पर रहे पुष्पों को यदि रात्रि में रखने पर जीवोत्पत्ति होती हो तो क्या करना चाहिए?

समाधान— फूलों में जीवोत्पत्ति होना उनका स्वभाव है। यदि रात्रि भर प्रतिमाजी के ऊपर पुष्प रहने से उनमें जीवोत्पत्ति की संभावना होती हो तो शाम को भी फूल हटाए जा सकते हैं।

शंका— अक्षय तृतीया के दिन इक्षुरस से किसका प्रक्षाल करना चाहिए?

समाधान— व्यवहारत: तो इक्षुरस से मात्र आदिनाथ भगवान का ही प्रक्षाल होता है परंतु यदि कहीं पर आदिनाथ भगवान की प्रतिमा ही न हो तो अन्य प्रतिमा का प्रक्षाल करने में कोई शास्त्रीय निषेध नहीं है। कुछ आचार्यों के अनुसार तो किसी भी परमात्मा का इक्षुरस से प्रक्षाल नहीं करना चाहिए, क्योंकि अविवेक से करने पर सूक्ष्म जीव-जंतुओं के उपद्रव एवं उनके हिंसा की पूर्ण संभावना रहती है जबकि कुछ आचार्य इसका समर्थन भी करते हैं। यदि यह प्रवृत्ति विवेक पूर्वक की जाए तो दोष जनक नहीं है।

शंका— एक बार प्रक्षाल होने के बाद दुबारा कर सकते हैं?

समाधान— संयोग अनुसार यदि शुभ भावों में अभिवृद्धि होती हो, आत्म परिणामों में उच्चता आती हो तो पुन: प्रक्षाल करने में कोई दोष नहीं है। परंतु यदि संघ की व्यवस्था भंग होती हो तो देरी से आने वालों को इसका आग्रह नहीं रखना चाहिए। छोटी पंच धातु की प्रतिमाजी का प्रक्षाल करके भी भावों की अभिवृद्धि की जा सकती है।

शंका— जिनपूजा में वरख का उपयोग कितना औचित्य पूर्ण है?

समाधान— जिनपूजा के अन्तर्गत परमात्मा की विविध अवस्थाओं का चिंतन किया जाता है। उन्हीं अवस्थाओं में से एक राज्य अवस्था है जिसके प्रतीक रूप में अंगरचना की जाती है। व्यवहार भाष्य में परमात्मा के श्रृंगार कर्म का अर्थ अंगरचना ही किया गया है। पंचाशक, षोडशक, दर्शनशुद्धि आदि प्रकरण ग्रन्थों में जिनपूजा हेतु उत्तम द्रव्यों के उपयोग का निर्देश दिया है। सोना-चाँदी आदि श्रेष्ठ द्रव्य माने जाते हैं इसी कारण वरख का प्रयोग किया जाता है। केवल शोभा या सुंदरता हेतु वरख का प्रयोग नहीं होता।

आंगी रचना परमात्मा से जुड़ने का साधन है। परमात्मा के बाह्य रूप से उनके आंतरिक स्वरूप का भान होता है। पिंडस्थ, पदस्थ एवं रूपातीत अवस्था

का चिंतन भी इसके माध्यम से हो सकता है। अत: आध्यात्मिक ऊर्ध्वारोहण की अपेक्षा से आंगी में वरख का प्रयोग करना औचित्यपूर्ण है। वर्तमान में वरख का निर्माण यांत्रिक साधनों से होने के कारण उसमें पूर्ववत् जीव हिंसा आदि का भी दोष नहीं लगता फिर भी। श्रावक वर्ग को द्रव्य की शुद्धता एवं श्रेष्ठता के विषय में जागृत रहने की आवश्यकता है।

शंका– परमात्मा की पूजा कब करनी चाहिए? तथा शास्त्रोक्त नियमों में किसी प्रकार का अपवाद मार्ग है?

समाधान– जैनाचार्यों ने श्रावक के लिए त्रिकाल पूजा का विधान किया है। इसमें प्रात:काल में वासक्षेप पूजा, मध्याह्न काल में अष्टप्रकारी पूजा एवं संध्या के समय धूप-दीप-आरती आदि का वर्णन है। यदि किसी श्रावक के लिए व्यापार आदि के कारण त्रिकाल पूजा करना संभव न हो तो वह एक ही बार में सारी पूजाएँ कर सकता है। वर्तमान की Fast Life एवं 9 से 5 के ऑफिस शेडयुल में त्रिकाल पूजा का विधान कुछेक श्रावकों द्वारा ही पालन किया जाता है।

श्राद्धविधि के अनुसार आजीविका आदि सुयोग्य कारण होने पर भी दो बार या एक बार पूजा अवश्य करनी चाहिए। परंतु यह अपवाद मार्ग है तथा उत्सर्ग मार्ग को लक्ष्य में रखकर ही अपवाद मार्ग का सेवन करना चाहिए। जब भी संभव हो तब श्रावक को मूल मार्ग का सेवन अवश्य करना चाहिए। परंतु सूर्योदय से पूर्व एवं सूर्यास्त के पश्चात पूजा नहीं करनी चाहिए।

शंका– साथिया अक्षत का ही बनाया जाए, क्या अन्य धान्यों का निषेध क्यों है?

समाधान– धान्यों में अक्षत (चावल) ही एक ऐसा द्रव्य है जो अखंड और अचित्त होता है शेष धान्य अखंड अवस्था में सचित्त होते हैं। अक्षत बोने पर जिस प्रकार वापस नहीं उगते उसी प्रकार आत्मा को भी अक्षय मोक्ष अवस्था की प्राप्ति हो उसके प्रतीक रूप में अक्षत का प्रयोग किया जाता है। अक्षत को एक मांगलिक धान्य भी माना गया है, लोक व्यवहार में इसका उपयोग अनेक शुभ कार्यों में देखा जाता है।

इस तरह चावल का प्रयोग साथिया बनाने हेतु तो होता ही है, परन्तु कहीं भी अन्य धान्यों का निषेध नहीं है। मांडला बनाते समय एवं ओलीजी में पाँच प्रकार के धान्यों का प्रयोग किया जाता ही है। आचारोपदेश नामक प्राचीन ग्रन्थ

में लिखा गया है कि "चोक्षाक्षतैः कणगणैर परैरपीह" इससे स्पष्ट है कि अन्य धान्यों द्वारा भी परमात्मा की पूजा की जा सकती है। वर्तमान में नंद्यावर्त, साथिया आदि चावल से बनाने का ही प्रचलन है।

शंका– सूर्योदय से पूर्व प्रक्षाल कर सकते हैं?

समाधान– शास्त्र मर्यादा के अनुसार जल पूजा का समावेश अष्टप्रकारी पूजा में होता है और उसका समय मध्याह्न काल है। परंतु वर्तमान में इस विधान का पालन नहींवत ही हो रहा है। श्रावकों की सुविधा हेतु प्रक्षाल आदि क्रियाएँ आजकल प्रात:काल में ही होने लगी है जो कि अपवाद मार्ग है। परिस्थितिवश अपवाद मार्ग का सेवन करते हुए भी मर्यादा का पालन अत्यावश्यक है। सूर्योदय से पूर्व कृत्रिम प्रकाश में जीवों की जयणा रखना असंभव है। अत: प्रक्षाल क्रिया सूर्योदय के बाद ही करनी चाहिए। इससे पहले पूजा करनी हो तो प्रतिमा की वासक्षेप पूजा कर लेनी चाहिए। प्रक्षाल आत्महित के लिए किया जाता है जबकि सूर्योदय से पूर्व प्रक्षाल करना जिनाज्ञा का उल्लंघन है जो किसी भी तरह हितकारी नहीं हो सकता।

शंका– मंदिरों में अखंड दीपक क्यों किया जाना चाहिए?

समाधान– प्रतिष्ठा-अंजनशलाका आदि विशिष्ट विधानों में वातावरण की शुद्धता, स्थान की पवित्रता, देवताओं के सानिध्य तथा सकारात्मक ऊर्जा की अपेक्षा से अखंड दीपक किया जाता है। इसी का अनुकरण करते हुए आजकल मंदिरों में अखंड दीपक जलाए जाते हैं। विधि ग्रन्थों में अखंड दीपक का निर्देश लगभग कहीं भी नहीं है। अत: इसे आवश्यक नहीं कह सकते। यद्यपि जीत व्यवहार का अनुकरण करते हुए अखंड दीपक जलाया जाए तो कोई दोष भी प्रतीत नहीं होता। आधुनिक लाईटों के उपयोग की अपेक्षा दीपक का प्रयोग वातावरण को अधिक आत्मरंजक एवं आह्लाद जनक बनाता है।

शंका– गणधर प्रतिमा की पूजा किस रूप में करनी चाहिए? और उनका अंजन विधान हो सकता है?

समाधान– गणधर प्रतिमा यदि भगवान के समान (केवली अवस्था) पद्मासन आदि मुद्रा में हो तो उसकी अंजनशलाका हो सकती है। जैसे पालिताना में विराजित पुंडरिक स्वामी की प्रतिमा। इस प्रतिमा का पूजन करने के बाद जिनमूर्ति की पूजा कर सकते हैं। छद्मस्थ अवस्था में स्थापित गणधर मूर्ति गुरु

मूर्ति के समान ही पूज्य होती है और इसका अंजन विधान भी नहीं होता।

शंका– त्रिकाल पूजा क्यों करनी चाहिए?

समाधान– उपदेश सप्ततिका के अनुसार

जो पूएइ तिसंझं जिणिंदरायं सया विगयदोसं।
को तइयभवे सिज्झइ, अहवा सत्तट्ठमे जम्मे।।

जिनेश्वर परमात्मा की त्रिकाल पूजा करने वाला तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करता है यदि ऐसा न हो तो सात-आठ भव में तो अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

द्रव्य पूजा का लौकिक फल बारहवें अच्युत देवलोक की प्राप्ति तथा लोकोत्तर फल मोक्ष है। नाग केतु को पुष्पपूजा करते-करते मोक्ष की प्राप्ति हुई थी।

शंका– सचित्त द्रव्यों से जिनपूजा करने पर जीव हिंसा नहीं होती?

समाधान– जैन धर्म भावना प्रधान धर्म है। कर्म बंधन में द्रव्य की अपेक्षा भावों की मुख्यता होती है। अप्रमत्त होकर जीव रक्षा, अनुकम्पा एवं जिनाज्ञा पालन के कार्य में स्वरूप हिंसा होने पर भी भाव शुद्धि के कारण लगने वाले दोष नगण्य होते हैं। जिस प्रकार रोग निवारण हेतु की गई शल्य क्रिया में डॉक्टर द्वारा पीड़ा पहुँचाने पर भी उसे हिंसा का दोष नहीं लगता, प्राण रक्षा के उद्देश्य से दाना चुगते कबूतर को उड़ाने पर भी कर्मबंधन नहीं होता उसी तरह आशय शुद्धि के साथ की गई जिनपूजा में भी जीव हिंसा का दोष नहीं लगता।

अरिहंत परमात्मा विशेष अतिशयों से युक्त होते हैं अत: उनके कारण किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचती। परमात्मा के साक्षात जन्म, दीक्षा और निर्वाण के समय उनका न्हवण सचित्त जल से ही किया जाता है। आज भी जिन प्रतिमा का प्रक्षाल इन्हीं तीन निमित्तों से किया जाता है। यह आगमोक्त विधान होने से इसमें जिनाज्ञा का पालन होता है।

जिनपूजा के विषय में यदि चिंतन करें तो साक्षात परमात्मा की भी अनिवार्य रूप से पुष्प पूजा होती है। परमात्मा के आठ प्रातिहार्य में से एक पुष्पवृष्टि नाम का प्रातिहार्य है। यदि यह अनुचित या हिंसा प्रधान होता तो परमात्मा इसका निषेध अवश्य करते। मिट्टी, बालू, ताड़पत्र, कागज आदि से निर्मित जिनप्रतिमा और चित्र आदि की जल एवं चंदन से पूजा न भी हो परन्तु पुष्प पूजा अवश्य होती है। परमात्मा के चरणों में चढ़ाने से उस जीव को निश्चित

रूप से अभयदान मिलता है। परमात्म चरणों में उन्हें स्वाभाविक मृत्यु की प्राप्ति होती है अन्यथा सांसारिक कारणों से तो उनकी मृत्यु निश्चित है ही। व्यवहार में भी पुष्प की भेंट सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। इस कारण पुष्पपूजा को दोषपूर्ण नहीं माना है।

इसी प्रकार धूप, दीप, फल आदि पूजाओं में भी जो द्रव्य अर्पित किए जाते हैं उनमें भी हिंसा का दोष नहींवत है क्योंकि वहाँ उनके प्रति आसक्ति या उनकी हिंसा के भाव नहीं है अपितु त्याग और जीव दया की भावना है।

इन सब द्रव्यों के द्वारा परमात्मा का गुण स्मरण, चिंतन आदि करते हुए भक्ति, तल्लीनता एवं एकाकारता के कारण सद्धर्म की प्राप्ति हो सकती है जो जीव के मुक्ति अवरोधों को समाप्त करती है।

जिस प्रकार पानी की बूंद साँप के मुँह में जाने से विष में परिवर्तित हो जाती है और वही पानी की बूंद स्वाति नक्षत्र में यदि सीप में जाए तो मोती बन जाती है। इसी प्रकार शारीरिक सुख एवं भोगोपभोग के लिए प्रयुक्त द्रव्य कर्मबन्धन का कारण अर्थात विष तुल्य बन जाता है वहीं परमात्म भक्ति में निरासक्त भाव से प्रयुक्त द्रव्य कर्म मुक्ति में हेतुभूत बनता है।

अत: परमात्म भक्ति के निमित्त सचित्त द्रव्यों की मात्र स्वरूप हिंसा होने से हिंसा का दोष नहीं लगता अपितु अहिंसा पालन का लाभ मिलता है।

शंका– अक्षय तृतीया के दिन इक्षुरस से प्रक्षाल करना दोषपूर्ण कैसे?

समाधान– अक्षय तृतीया के दिन भगवान आदिनाथ का इक्षुरस से प्रक्षाल करने का विधान सर्वत्र देखा जाता है। जब किसी भी क्रिया के मूल आशय को समझे बिना जब उसका अंधानुकरण किया जाता है तो वह कर्म निर्जरा की अपेक्षा कर्म बंधन का कारण बन जाती है। इक्षुरस से भगवान आदिनाथ ने पारणा किया था और उसी निमित्त भगवान का इक्षुरस से प्रक्षाल किया जाता है।

वर्तमान में बढ़ रहे अविवेक, आशातना आदि को देखते हुए अधिकतम आचार्य इसका निषेध करते हैं। सर्वप्रथम तो भगवान ने उसे आहार रूप में ग्रहण किया अत: उससे प्रक्षाल करना किसी भी रूप से योग्य नहीं लगता। इक्षुरस की मिठास के कारण असंख्य छोटे जीव-जन्तु और चींटिया उत्पन्न होती है तथा उनकी हिंसा का दोष लगता है। अच्छे से सफाई आदि न हो तो अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होने की संभावना भी रहती है। प्रक्षाल हेतु लोगों की भीड़,

उसकी अव्यवस्था एवं क्लेश आदि से बिगड़ते परिणाम कई बार कर्म बंधन में हेतुभूत बन जाते हैं। अतः इक्षुरस से प्रक्षाल नहीं करना चाहिए।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं कि अठारह अभिषेक आदि में भी विविध औषधियों से प्रक्षाल किया जाता है, उसमें एक इक्षुरस भी होता है तथा मेरू पर्वत पर जब साक्षात परमात्मा का स्नात्र महोत्सव मनाया जाता है तब भी एक समुद्र का जल इक्षुरस के समान ही होता है, तो फिर अक्षय तृतीया के दिन इक्षुरस से न्हवण क्यों नहीं कर सकते?

अठारह अभिषेक मंदिर के वातावरण की शुद्धि का विधान है। इसमें लोगों की भीड़ भी उतनी अधिक नहीं रहती तथा मूर्तियों की साफ सफाई भी अच्छे से की जाती है। इस क्रिया के द्वारा वातावरण आदि के दुष्प्रभाव से मूर्तियों में आए विकारों को दूर किया जाता है। स्नात्र महोत्सव के दौरान जिन-जिन नदियों के जल का उपयोग किया जाता है वह स्वभाव से ही उन गुणों से युक्त होता है। जबकि अक्षय तृतीया के दिन प्रक्षाल करने में आराधना की अपेक्षा विराधना होने की अधिक संभावना रहती है। अतः वर्तमान देश-काल परिस्थिति को देखते हुए अक्षत तृतीया पर इक्षुरस से प्रक्षाल करना उचित प्रतीत नहीं होता।

शंका– मूलनायक भगवान के दोनों ओर दीपक रखना चाहिए?

समाधान– दीपक पूजा का समावेश अग्रपूजा के अन्तर्गत होता है। अग्रपूजा मूल गंभारे के बाहर करने का विधान है। इस विधान को देखते हुए मूल गंभारे में दीपक रखना विधि का उल्लंघन है एवं परमात्मा की आशातना है। दीपक नजदीक रहने से प्रतिमा को नुकसान पहुँचता है। इसी के साथ दीपक से निकलने वाली कालिमा गर्भगृह को काला बना देती है। अतः मूल गर्भगृह में परमात्मा के आस-पास दीपक नहीं रखने चाहिए।

शंका– पूजा किस क्रम पूर्वक करनी चाहिए?

समाधान– सर्वप्रथम मूलनायक परमात्मा की पूजा करनी चाहिए। फिर मूलनायक परमात्मा के दायीं ओर के भगवान की फिर मूलनायक परमात्मा के बायीं ओर के भगवान की। फिर शेष सभी जिन प्रतिमाओं की पूजा करने के बाद सिद्धचक्र गट्टा, बीशस्थानक गट्टा आदि की। उसके पश्चात गुरु मूर्तियों की। तदनन्तर यक्ष-यक्षिणी एवं अधिष्ठायक देवी-देवताओं के मस्तक पर तिलक करके उनके सम्यगदर्शन का सम्मान करना चाहिए।

शंका– नित्य प्रक्षाल का विधान ऐतिहासिक है या अर्वाचीन?

समाधान– यदि ऐतिहासिक सूत्रों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि लगभग बारहवीं शती में नित्य प्रक्षाल-विलेपन आदि की परम्परा प्रारंभ हुई है।

प्रबंध पारिजात के अनुसार–

प्रतिमा पट्टयंत्राणां, नित्यस्नानं न कारयेत्।
कारयेत् पर्वदिवसे, सदा वा मलधारणम्।।

पाषाण आदि की प्रतिमा एवं पट्ट तथा धातु के यंत्र को नित्य स्नान न करवाएँ। किसी पर्व विशेष के दिन या मैल लग जाए तो स्नान करवाएँ।

चैत्यवंदन महाभाष्य के अनुसार विक्रम की 12वीं शती तक जैन मूर्तियों के विषय में यही मत प्रचलित था। उस समय नित्य स्नान न करवाकर पंचोपचारी या अष्टोपचारी पूजाएँ ही की जाती थी।

कई लोगों के मन में यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि नित्य प्रक्षाल आदि क्रिया नहीं करने से आशातना तो नहीं होती?

जिस काल में जो व्यवहार या सामाचारी प्रचलित हो उसका पालन करने में आशातना नहीं होती। पूर्व काल में विशेष महोत्सव के अवसर पर महास्नात्र करवाया जाता था। जिसमें विशिष्ट सुगंधित द्रव्यों से प्रक्षाल किया जाता था। प्रतिदिन के प्रक्षाल का विधान नहीं था। आनंदघनजी महाराज सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में पंचोपचारी एवं अष्टोपचारी पूजा का उल्लेख करते हैं। पंचोपचारी पूजा में तो जल पूजा का उल्लेख ही नहीं है तथा अष्टोपचारी पूजा में जल पूजा आठवें क्रम पर वर्णित है और उसमें भी जल से भरा हुआ कलश रखने का विधान था, प्रक्षाल का नहीं। अत: यह तो सुसिद्ध है कि पूर्व काल में नित्य प्रक्षाल क्रिया नहीं होती थी।

यदि वर्तमान संदर्भों में विचार करें तो विवेक पूर्वक निर्णय लेना आवश्यक है। जहाँ श्रावकवर्ग स्वयं शास्त्रोक्त विधि का अनुसरण करते हों वहाँ पर नित्य प्रक्षाल अवश्य करना चाहिए। परंतु जहाँ सब काम पुजारियों के भरोसे हैं वहाँ परमात्मा की भक्ति नहीं कम्बखती होती है। इन परिस्थितियों में प्राचीन सामाचारी का अनुसरण अधिक लाभकारी प्रतीत होता है।

पूज्य मुनि श्री पीयूषसागरजी म.सा. आधुनिक सुविधावादी युग में नित्य प्रक्षाल के हानियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि पूर्वकाल की अपेक्षा आज

जैनों के घरों एवं गृह-मन्दिरों की संख्या घटती जा रही है। अणहिलपुर पाटन में जहाँ 11वीं सदी के समय 500 घर-मंदिर थे वहाँ आज मात्र 30 घर मंदिर शेष रह गए हैं।

नित्य प्रक्षाल के कारण मन्दिरों के कार्य बढ़ गए हैं इस कारण पुजारी एवं कर्मचारियों की संख्या में भी वर्धन हुआ है उनके वेतन हेतु चढ़ावों की संख्या भी बढ़ रही है। प्रक्षाल जल को यत्र-तत्र डालने से जीव हिंसा एवं आशातना की संभावना बढ़ गई है। प्रक्षाल हेतु बासी दूध या पैकेट के दूध का प्रयोग भी होने लगा है। व्यवस्थित प्रक्षाल आदि न होने से मूर्तियों के पत्थर जल्दी खराब होने लगे हैं। अनेक मंदिरों में तो सूर्योदय से पूर्व ही प्रक्षाल क्रिया हो जाती है जिसके लिए रात्रि में ही पानी की बाल्टियाँ भरकर रख देते हैं।

सर्दियों में कई बार बिना स्नान किए ही पुजारी प्रक्षाल आदि क्रिया सम्पन्न कर लेता है। पहने हुए वस्त्रों में ही पुजारी एवं कर्मचारी वर्ग मूल गर्भगृह में चले जाते हैं। इससे मंदिरों एवं अधिष्ठायक देवों का प्रभाव न्यून होता जा रहा है।

कई तीर्थों में प्रतिमाओं की अधिकता के कारण पुजारी केवल गीला कपड़ा मूर्तियों पर फेर देता है।

वर्तमान की इन भयावह स्थितियों को देखते हुए श्रावक वर्ग को जागृत होकर कोई ठोस निर्णय अवश्य लेना चाहिए।

शंका– मंदिर में चढ़ाए गए अक्षत, फल आदि निर्माल्य द्रव्यों का क्या करना चाहिए?

समाधान– निर्माल्य द्रव्य के विषय में दो मत प्रचलित है। प्रथम मत के अनुसार निर्माल्य द्रव्य को बाजार में बेचकर प्राप्त राशि से देवद्रव्य की वृद्धि की जा सकती है। अन्य मतानुसार यह द्रव्य पुजारी को दिया जाता है। प्रथम मत का समर्थन सभी आचार्य करते हैं।

मुनि पीयूषसागरजी म.सा. के अनुसार यदि पूर्व परम्परा से निर्माल्य द्रव्य पुजारी को दिया जाता है तो इसमें अब विक्षेप नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उनके मन में सेवा आदि के भाव कम हो सकते हैं तथा वे मंदिर के कार्यों में भी ढिलाई बरत सकते हैं। निर्माल्य से प्राप्त 25-30 हजार की राशि की अपेक्षा अजैनों की संतुष्टि एवं सहकार मंदिर सुरक्षा हेतु अधिक आवश्यक है, अन्यथा चोरी आदि से लाखों का नुकसान हो सकता है। यदि नूतन जिनालय

का निर्माण किया जा रहा हो तो प्रथम मत का ही अनुसरण करना चाहिए।

शंका— बाजार में बेचने पर भी निर्माल्य द्रव्य की यथोचित राशि तो प्राप्त नहीं होती अत: द्रव्य पूजा के स्थान पर उतनी राशि भंडार में डाल दी जाए तो ज्यादा उचित नहीं है?

समाधान— श्रावक के द्वारा जिनालय में द्रव्य अर्पण करने का हेतु केवल देव द्रव्य की वृद्धि ही नहीं है अपितु उसका मुख्य ध्येय त्याग एवं उल्लास भाव का वर्धन है। द्रव्य अर्पण करने से जो भाव विशुद्धि होती है वह भंडार में पैसा डालने से नहीं हो सकती। ऐसा करने पर तो अक्षत, फल आदि पूजाओं का महत्त्व एवं अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

द्रव्य की गुणवत्ता हो सकती है किन्तु पैसे की गुणवत्ता कैसे निश्चित की जाए। हर बात में पैसे का उपयोग होने से आम जनता को भक्ति अनुष्ठान भार रूप लगने लगते हैं तथा भावों में भी न्यूनता आ जाती है। इन सब अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए हर स्थान पर देव द्रव्य वृद्धि को महत्त्व देना उचित नहीं है।

इसके स्थान पर प्रतिमाह प्राप्त निर्माल्य को चढ़ाएं अथवा नकरे के आधार पर श्रावकों को दे देंना चाहिए और श्रावक वर्ग उसे दीन-दुखियों में बाँट सकता है। इससे देवद्रव्य की भी हानि नहीं होगी तथा अनुकंपा दान का भी लाभ श्रावकों को प्राप्त हो सकेगा।

शंका— बरास पूजा और इत्र पूजा अलग-अलग है या दोनों किसी एक पूजा के ही अंग है?

समाधान— बरास पूजा और इत्र पूजा दोनों चंदन पूजा के अंतर्गत समाविष्ट होते हैं। यह सुगंधी द्रव्यों के विलेपन करने का मूलभूत विधान है।

शंका— भगवान की चंदन पूजा करनी चाहिए या केसर पूजा?

समाधान— विलेपन पूजा का रूढ़ नाम चंदन पूजा है। चंदन पूजा का मूल अर्थ है सुगन्धित द्रव्यों द्वारा परमात्मा का विलेपन करना। इसमें सभी सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण करने का विधान है। केशर, चंदन, ब्रास, कस्तूरी आदि अनेक द्रव्यों का मिश्रण कर विलेपन तैयार किया जाता है। मौसम के अनुसार उसमें केशर, चन्दन आदि की मात्रा निश्चित की जाती है। अत: केशर और चंदन पूजा दोनों एक ही है अत: किसी एक को करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

●

अध्याय-5

वर्तमान में गृह मन्दिरों का औचित्य कितना?

शंका– शहर में संघ मंदिर होने पर गृह मंदिर की आवश्यकता क्यों?

समाधान– शहर में अस्पताल होने पर भी घर में First Aid Box क्यों रखा जाता है? Multiplex Cinema Hall होने पर घर में T.V. की क्या आवश्यकता? Account में पैसा होने पर घर में Cash क्यों रखा जाता है? इन प्रश्नों का उत्तर आप सभी जानते हैं।

जो वस्तु सामूहिक अधिकार की होती है उसमें सामुदायिक नियमों के अनुसार ही वर्तन किया जाता है। व्यक्ति, इच्छा एवं आवश्यकता अनुसार उनका प्रयोग नहीं कर सकता। इसी प्रकार सामूहिक मंदिर में व्यक्ति को नियम एवं मर्यादा के अनुसार समय नियोजन करना पड़ता है। कोई व्यक्ति यदि अधिक समय तक परमात्म भक्ति करना चाहे अथवा स्वेच्छा से सुविधा अनुसार मन्दिर में जाकर बैठना चाहे तो संघ मन्दिर में वह संभव नहीं है। वहीं गृह मन्दिर होने पर इच्छा अनुसार परमात्म भक्ति की जा सकती है। परिवार में उत्तम संस्कारों का रोपण कर सकते हैं। शारीरिक अस्वस्थता या विशेष कारण उपस्थित होने पर व्यक्ति परमात्म दर्शन से वंचित नहीं रहता। इससे घर का वातावरण भी शुद्ध, सात्त्विक एवं सम्यक बनता है। गृह मंदिर घर में ऊर्जा स्रोत की भाँति कार्य करता है। अत: विशेष आत्म आराधना के उद्देश्य से संघ मन्दिर होने पर भी गृह मन्दिर होना नितांत आवश्यक है।

शंका– जिस घर में हम रहते हैं वहाँ परमात्मा को स्थापित करने से आशातना नहीं होती?

समाधान– गृहांगन में पूज्यजनों का होना आशातना में नहीं बल्कि आराधना में सहायक बनता है। आदर-सम्मान एवं विधिपूर्वक उनकी भक्ति करने से विराधना नहीं होती फिर भी उपयोगपूर्वक कार्य करते हुए प्रमाद या

अज्ञानवश कोई अविधि हो जाए तो उसकी शुद्धि हो सकती है। परन्तु जान बूझकर प्रमाद या अपनी सुविधा हेतु गृह मन्दिर नहीं बनवाना बहुत बड़ी आशातना है। घर में रहते हुए माता-पिता या बालकों का पोषण नहीं कर सकें तो कोई दोष नहीं है किन्तु असमर्थता के कारण उन्हें घर से निकाल देना तो अक्षम्य दोष है। इसी तरह परमात्मा के विषय में समझना चाहिए। यदि गृह मन्दिर आशातना का कारण बनता हो तो उसके निराकरण का प्रयास करना चाहिए न कि गृह मन्दिर का उत्थापन कर देना चाहिए।

शंका– जिस परिवार में महिलाएँ अंतराय का पालन नहीं करती हो वहाँ घर मन्दिर बनाया जा सकता है?

समाधान– आज के अमर्यादित प्रगतिशील युग में अंतराय (M.C.) पालन को लोग झंझट एवं रूढ़िवादिता समझते हैं। एकल परिवार की संस्कृति एवं बाहर रहने वाले Educated लोग इसे प्रायः असंभव एवं असार्थक मानते हैं। परंतु वैज्ञानिक, मानसिक, प्राकृतिक एवं शारीरिक दृष्टि से इसका पालन जरूरी एवं हितकारी है। जिन घरों में सदस्यों की संख्या अधिक हो या काम चल सकता हो उन्हें पालन करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए फिर भी यदि किसी के लिए संभव नहीं हो तो ऐसे घरों में अलग कमरे या कपाट आदि में घर मन्दिर बनाना चाहिए। यदि अंतराय के कारण से गृह मन्दिर बनाना ही बंद हो जाए तब तो कुछ समय में घर मन्दिर की परम्परा ही लुप्त हो जाएगी।

शंका– महंगाई के युग में जहाँ छोटे-छोटे घरों में रहने की जगह परिपूर्ण नहीं है वहाँ गृह चैत्य कैसे बनवाएँ?

समाधान– जहाँ चाह हो वहाँ राह मिल ही जाती है। छोटे-छोटे घरों में भी T.V., Freeze, A.C., Computer के लिए जगह बन ही जाती है। Favourate Actor-Actress की फोटो लग ही जाती है। वैसे ही कोई व्यक्ति यदि चाहे तो छोटे घर में भी थोड़ी सी जगह घर मन्दिर के लिए बना सकता है। यदि अलग से रुम न हो तो Gallery या खिड़की में जैसे A.C. Fit करते हैं वैसे बना सकते हैं और वह भी संभव न हो तो छोटे कपाट या गोखले में परमात्मा की स्थापना कर सकते हैं। हृदय में जगह हो तो घर में अपने आप जगह बन जाती है।

शंका– जिस कमरे में मन्दिर हो वहाँ अन्य सांसारिक क्रियाएँ कर सकते हैं?

समाधान– यदि कमरे का निर्माण विशेष रूप से घर मन्दिर के लिए ही किया गया हो तो वहाँ सांसारिक कार्य नहीं करना ही ज्यादा उचित है। परंतु यदि सामान्य कमरे में मन्दिर बनाया गया हो तो जब तक पूजा भक्ति आदि कार्य कर रहे हों तब तक सांसारिक कार्य नहीं करने चाहिए। शेष समय में पर्दा करके या दरवाजा बंद करके सांसारिक कृत्य किए जा सकते हैं। इससे जिनमंदिर भोग का दोष नहीं लगता।

शंका– अन्य श्रावकों द्वारा प्रदत्त सामग्री से गृह मन्दिर में पूजा कर सकते हैं?

समाधान– जहाँ तक संभव हो गृह मन्दिर में स्व सामग्री का ही प्रयोग करना चाहिए। यदि कोई अन्य व्यक्ति अति आग्रह पूर्वक सामग्री दे रहा हो तो उसके भावों को ध्यान में रखते हुए उसे ग्रहण करने के बाद अपनी सामग्री के साथ अतिरिक्त सामग्री के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। प्रदत्त सामग्री को संघ मन्दिर में भी अर्पित कर सकते हैं।

शंका– घर मन्दिर में एकत्रित निर्माल्य द्रव्य एवं भंडार की आवक का उपयोग कहाँ करना चाहिए?

समाधान– व्यक्तिगत गृह मंदिर के भंडार एवं निर्माल्य द्रव्य की आवक को देवद्रव्य के रूप में तीर्थ या संघ मन्दिर के जीर्णोद्धार हेतु प्रयुक्त करना चाहिए। घर मंन्दिर का कोई भी कार्य उस द्रव्य से नहीं हो सकता। उस राशि का जहाँ भी उपयोग किया जाए वहाँ खुद का नाम नहीं लिखवाकर 'स्वयं के हस्तगत अमुक गृह मन्दिर के देवद्रव्य की आवक में से दिया' ऐसा लिखवाना चाहिए। निर्माल्य द्रव्य भी संघ मंदिर में जमा करवाना चाहिए अथवा एकत्रित सामग्री को बेचकर उतना द्रव्य देवद्रव्य में डाल देना चाहिए। घर के नौकरों को वह सामग्री नहीं दे सकते।

शंका– गृह मंदिर मे गुरु मूर्ति रख सकते हैं?

समाधान– जिन प्रतिमा और गुरु प्रतिमा दोनों ही स्थापना निक्षेप है केवल दोनों में स्तर भेद है अत: दोनों के स्थान को ऊपर नीचे रखते हुए क्रम पूर्वक

स्थापना कर सकते हैं। सामान्यतया जब स्नात्र पूजा आदि में गुरु महाराज पधारते हैं तो परमात्मा के समक्ष श्रावकगण खड़े होकर गुरु का विनय करते हैं अतः गृह चैत्य में गुरु मूर्ति स्थापित की जा सकती है।

शंका– गृह मंदिर में परमात्मा की दृष्टि मिलानी जरूरी है?

समाधान– गृह मंदिर यदि शिखरबद्ध या संवरणाबद्ध प्रासाद के रूप में हो तथा द्वार शाखा आदि शिल्पांगों का भी ध्यान रखा गया हो तो दृष्टि भी अवश्य रूप से मिलानी चाहिए। यदि सामान्य देहरी, गोखला या कपाट आदि में प्रतिमा स्थापित की गयी हो तो दृष्टि मिलाना जरूरी नहीं है।

शंका– गृह मंदिर के ऊपर ध्वजा, ध्वजदंड, कलश आदि रखना चाहिए?

समाधान– घर मंदिर में ध्वजा रखने की कोई शास्त्रोक्त विधि नहीं है। ध्वजा नहीं होने पर ध्वजदंड भी नहीं होता। यदि गृह मंदिर का शिखर संवरणा की आकृति का हो तो कलश, आमलसर आदि जरूरी होते हैं अन्यथा नहीं। कई लोग स्वयं के संतोष के लिए भी ध्वजा रखते है।

शंका– यदि संपूर्ण परिवार नगर से बाहर जा रहा हो तो गृह मंदिर में विराजित प्रतिमा की पूजा कैसे करनी चाहिए?

समाधान– उपरोक्त परिस्थिति में प्रतिमाजी किसी सुज्ञ श्रावक को संभलानी चाहिए अथवा संघ मंदिर में विनती पूर्वक रखनी चाहिए। फिर बाहर से वापस आने के बाद शुभ चौघड़िये में बहुमानपूर्वक पोंखण करके प्रतिमाजी का गृह मंदिर में पुनः प्रवेश करवाना चाहिए।

शंका– गृह मंदिर में विराजित जिनेश्वर परमात्मा की विशेष भक्ति कैसे करें?

समाधान– गृह मंदिर में विराजित परमात्मा की विशेष भक्ति हेतु उनके नाम की कम से कम एक माला फेरना, वर्षगांठ कल्याणक पर्व आदि के दिन विशेष अंग रचना करना, त्रिशष्टिशलाका पुरुष आदि ग्रन्थों के अनुसार उनके चारित्र का वांचन करना, सामूहिक भक्ति आदि का आयोजन रखना इस प्रकार के विशिष्ट कृत्यों के द्वारा परमात्मा की विशेष भक्ति कर सकते हैं।

शंका– गृह-मंदिर में स्थाप्य प्रतिमा को किस द्रव्य से स्थिर करना चाहिए?

समाधान– सामान्यतया घर मन्दिर में चल प्रतिमा रखना अधिक उपयुक्त है। इससे परिस्थिति विशेष में उनका स्थानांतरण सहज हो सकता है, सफाई भी समुचित रूप से हो सकती है। विशेष संयोगों में गुरु भगवंतों से निर्देशन लेकर कार्य करना चाहिए।

शंका– घर, मंदिर में प्रतिष्ठा के शिलालेख लिख सकते हैं?

समाधान– यदि घर मन्दिर की प्रतिष्ठा हेतु गुरु भगवंतों की निश्रा प्राप्त हुई हो तो प्रतिष्ठा संवत, तिथि, निश्रादाता गुरु का नाम आदि शिलालेख के रूप में अवश्य लिखना चाहिए। इससे भावी पीढ़ी को अनायास प्रेरणा एवं जानकारी प्राप्त होती है।

शंका– घर मन्दिर में चढ़ाई गई सामग्री घर के नौकरों को दे सकते है?

समाधान– घर मन्दिर का निर्माल्य द्रव्य स्व आश्रित नौकरों को नहीं दिया जा सकता। यहाँ तक की उनसे मूल्य लेकर भी उन्हें नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे देव द्रव्य का दोष लगने की संभावना रहती है, ऐसा आचार्यों का मत है। निर्माल्य द्रव्य ऐसे अजैन व्यक्ति को देना चाहिए जिसके साथ कोई सम्बन्ध या व्यवहार नहीं हो।

शंका– घर मन्दिर में हर वर्ष अठारह अभिषेक करना आवश्यक है?

समाधान– घर मंदिर में अठारह अभिषेक करवाने का कोई विधान नहीं है। परंतु यदि कर लिया जाए तो कोई दोष भी नहीं है। जाने-अनजाने में घर के वातावरण आदि के कारण जो आशातना एवं दोष लगते हैं उनका निवारण इसके द्वारा हो सकता है।

शंका– गृह चैत्य में आरती कब करनी चाहिए?

समाधान– सामान्य संयोगों में संध्या के समय आरती, मंगल दीपक आदि करना चाहिए। परंतु विशेष कारण उपस्थित होने पर या नगर से बाहर जाते समय सुबह अष्ट प्रकारी पूजा करके भी आरती कर सकते हैं।

शंका– गृह चैत्य खोलने और बंद करने के विषय में क्या नियम है?

समाधान– सामान्यतया गृह मन्दिर को सूर्योदय के बाद खोलना और सूर्यास्त के बाद बंद कर देना चाहिए। संयोग विशेष के कारण या भक्ति आदि के निमित्त से आगे-पीछे भी खोल या बंद कर सकते हैं।

शंका– रात्रि में किसी की शारीरिक स्थिति गंभीर (Serious) हो जाए तो समाधि हेतु घर मंदिर खोल सकते हैं?

समाधान– इस प्रकार की विशेष परिस्थितियों में घर मंदिर खोल सकते हैं क्योंकि किसी प्रकार का निषेध शास्त्रों में प्राप्त नहीं होता है।

शंका– गृह मंदिर कौनसी दिशा में होना चाहिए?

समाधान– गृह मंदिर का मुख पश्चिम या दक्षिण दिशा में होना चाहिए। इससे पूजा करने वाले का मुख पूर्व या उत्तर दिशा में रहता है। पूजा के लिए यह दोनों दिशाएँ शुभ मानी गई है। पूजार्थी का मुख पश्चिम दिशा में होने से पीढ़ी का नाश, दक्षिण में होने से संतान की हानि, अग्नि कोण में धन का नाश, वायु कोण में संतति का नाश, नैऋत्य कोण में फल का नाश एवं ईशान कोण में होने से संपत्ति का नाश होता है।

शंका– गृह मन्दिर में कौन से भगवान की प्रतिमा रखनी चाहिए?

समाधान– घर मन्दिर अथवा संघ मन्दिर में प्रतिमा की स्थापना धारणा यंत्र के अनुसार की जाती है। कुछ शास्त्रों में मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी के नाम से घर मन्दिर बनवाने का निषेध किया गया है। इसका मुख्य कारण यह माना जाता है कि यह तीनों तीर्थंकर पुत्र रहित थे जबकि गृहस्थ पुत्र कामना से युक्त होता है। यह मूर्तियाँ विशेष वैराग्य में आलम्बनभूत बनते हुए गृहस्थ को गृह कार्यों में अनासक्त कर सकती है। इससे अन्य बाल जीवों के मन में गृह मंदिर के प्रति अभाव उत्पन्न हो सकता है। गृहस्थ की इसी विचारधारा को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकारों ने उक्त तीन भगवानों का निषेध किया है।

शंका– गृह चैत्य में रखने योग्य प्रतिमा की लम्बाई कितनी होनी चाहिए?

समाधान– घर मन्दिर में रखी गई प्रतिमा ग्यारह इंच से ज्यादा लम्बी नहीं होनी चाहिए। प्रतिमा परिकर युक्त 3, 5, 7, 9 और 11 इंच की हो सकती है।

शंका– गृह मन्दिर में किस धातु की प्रतिमा रख सकते हैं?

समाधान– ग्रन्थकारों के अनुसार गृह मन्दिर में पाषाण, लोह, चंदन, लकड़ी, हाथी दाँत एवं लेपयुक्त प्रतिमा नहीं रखनी चाहिए। रत्नसंचय प्रकरण के अनुसार पाषाण आदि की प्रतिमा घर में विराजमान करने से धन का नाश होता है। गृह मंदिर में धातु प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए। कारण विशेष में अन्य प्रतिमाओं को स्थानांतरित करने से उनके खंडित होने की भी संभावना रहती है, जबकि धातु की प्रतिमा होने पर इस आशातना से बच सकते हैं।

शंका– गृह मन्दिर कहाँ होना चाहिए?

समाधान– मन्दिर हेतु यदि अलग से कमरा बनाया गया हो तो वहाँ अथवा घर में प्रवेश करते हुए बायीं तरफ होना चाहिए। भूमितल से कम से कम डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर गृह मन्दिर होना चाहिए।

शंका– गृह मन्दिर की पूजा करने के पश्चात संघ मन्दिर में पूजा करना जरूरी है?

समाधान– संघ मन्दिर में भी पूजा अवश्य करनी चाहिए अन्यथा वीर्यान्तराय पापकर्म आदि का बन्धन होता है।

शंका– गृह मन्दिर कैसे बनवाना चाहिए?

समाधान– घर की दीवार में गोखला (आला) बनवाकर उसमें प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए। इससे उसके ऊपर की मंजिल की दीवार आदि आने से पैर आदि आने की आशातना नहीं लगती। यदि वैसे संभव न हो तो मन्दिर के ऊपर घुम्मट आदि बनवाना चाहिए।

शंका– गृह मन्दिर में कौनसी प्रतिष्ठा करनी चाहिए और क्यों?

समाधान– गृह मन्दिर में चल प्रतिष्ठा का विधान है। चल प्रतिष्ठित प्रतिमा को स्थानांतरित किया जा सकता है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए यात्रा आदि अनेक कारण उपस्थित होते रहते हैं। स्थिर प्रतिष्ठा करने पर अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है। प्रतिमाजी का उत्थापन करते हुए उनके खंडित होने की भी संभावना रहती है। चल प्रतिष्ठा अधिक मास में भी हो सकती है।

शंका– वर्तमान में घर मन्दिरों की संख्या कम क्यों हो रही है?

समादान– यदि हम ऐतिहासिक तथ्यों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है

कि पूर्व में प्राय: हर घर में गृह मन्दिर होता था। 19वीं शती तक अणहिलपुर पाटण में लगभग 500 घर मन्दिर थे। आज वह संख्या कम होते-होते 30 तक पहुँच गई है। सूक्ष्म चिंतन करने पर निम्न तथ्य प्रकट होते हैं–

पूर्वकाल में नित्य पूजा का विधान नहीं था अत: श्रावकों को घर मंदिर बनाने के बाद कोई विशेष प्रबंध नहीं करना पड़ता था। श्रावक स्वेच्छा से परमात्म भक्ति करते थे, किसी नियम का बंधन नहीं था। दूसरा कारण आज की जीवन शैली और पूर्व की जीवन शैली में बहुत अंतर आ गया है। आज के लोगों को धर्म एवं अध्यात्म अंधविश्वास लगते हैं। वे मात्र व्यावसायिक एवं भौतिक जीवन को प्रमुखता देते हैं। बढ़ती आबादी के कारण जगह की समस्या भी एक बहुत बड़ी समस्या है। मुंबई जैसे छोटे-छोटे घरों में घर मन्दिर बनाना संभव भी नहीं है।

अंतराय का पालन नहींवत होता है इससे आशातना होने का भय रहता है। ऐसी ही अनेक भ्रान्त मान्यताओं के कारण घर मन्दिरों की संख्या घटती जा रही है

शंका– घर मंदिर के उपकरण गृह कार्य में अथवा घर के उपकरण गृह मंदिर के कार्य में प्रयुक्त हो सकते हैं?

समाधान– घर मंदिर की कोई भी वस्तु सांसारिक गृह कार्य के लिए उपयोग में लेना अनुचित है तथा सांसारिक गृह कार्य में प्रयुक्त वस्तु का मंदिर के कार्य में उपयोग भी योग्य नहीं। यदि कारण विशेष में घर की वस्तु का उपयोग मंदिर के लिए करना हो तो उसे अच्छे से मांजकर शुद्धि पूर्वक काम में लेनी चाहिए। जो उपकरण प्रभु के समक्ष समर्पित न किए गए हों उनका गृह कार्य के लिए उपयोग हो सकता है।

प्रश्न– गृह मंदिर में अखंड दीपक होना आवश्यक है?

समाधान– श्री संघ मंदिर में भी अखंड दीपक को आवश्यक नहीं माना है तो फिर घर मंदिर में अखंड दीपक आवश्यक कैसे हो सकता है? पूजा-सेवा के समय दीपक प्रगटाकर आरती आदि करने तक उसका उपयोग होता है उसके बाद न जले तो भी कोई दोष नहीं है और जलता रहे तो कोई हानि भी नहीं है।

प्रश्न– घर में बहने M.C. (अंतराय) होने पर किस प्रकार विवेक उपयोग रखें?

समाधान– M.C. वाली बहनों की दृष्टि परमात्मा पर नहीं आनी चाहिए एवं परमात्मा की दृष्टि M.C. वाली बहन पर नहीं पड़नी चाहिए। बहनों को यदि वहाँ से जाना हो तो परमात्मा के आगे पर्दा या पार्टिशन करके जा सकती हैं।

प्रश्न– गृह मंदिर की वर्षगाँठ (सालगिरह) कैसे मनानी चाहिए?

समाधान– शिखरबद्ध, सामरण सहित या ध्वजायुक्त मंदिर होने पर श्री संघ मंदिर के समान ही पूजा आदि करवाकर ध्वजारोहण करना चाहिए। सामान्य घर मन्दिर हो तो शक्ति अनुसार आंगी,पूजा, प्रभावना आदि कर सकते हैं।

शंका– गृह मंदिर और संघ मंदिर की आशातनाओं में कोई अंतर होता है?

समाधान– मंदिर परमात्मा का स्थान है अत: चाहे घर मंदिर हो चाहे संघ मंदिर। दोनों जगह आशातनाएँ एवं दोष समान रूप से लगते हैं। गृह मंदिर की पूजा-सेवा भक्ति करते समय किसी प्रकार का सांसारिक कार्य नहीं करना चाहिए। परमात्मा को पर्दा करने के बाद या मंदिर मंगल करने के बाद सांसारिक कार्य कर सकते हैं।

●

अध्याय-6

ऐसे करें जिन मन्दिर व्यवस्था

शंका– मन्दिर में घड़ी क्यों नहीं लगानी चाहिए?

समाधान– मन्दिर काल पर विजय प्राप्त करने का स्थान है अत: वहाँ काल दर्शक यन्त्रों का उपयोग क्यों हो? पूजा-दर्शन आदि करते समय इसके कारण एकाग्रता खंडित होने की संभावना रहती है। घड़ी में प्रयुक्त सेल, चमड़े के बेल्ट, स्टेनलेस स्टील आदि अशुद्ध द्रव्य माने जाते हैं। इनके स्पर्श से परमात्मा की आशातना होती है। वायुकाय जीवों की हिंसा का अकारण दोष लगता है इत्यादि हेतुओं से मन्दिर में घड़ी के प्रयोग का निषेध है।

समाधान– प्रभु प्रतिमा से अलग हुए चक्षु, तिलक, कपाली आदि फेवी क्वीक से चिपका सकते हैं?

समाधान– किसी भी प्रकार के केमिकल से बने हुए सोल्युशन आदि का प्रयोग जिन प्रतिमा पर नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह सभी द्रव्य अशुद्ध माने जाते हैं और इनके प्रयोग से जिनेश्वर परमात्मा की आशातना होती है। तिलक, टीका, चक्षु आदि चिपकाने हेतु राल का प्रयोग करना चाहिए। यदि विधिपूर्वक राल का प्रयोग किया जाए तो चिपकाए गए तिलक आदि बार-बार नहीं खुलते।

वर्तमान में पंचधातु की प्रतिमा-गट्टा जी आदि की चमक बढ़ाने के लिए पिताम्बरी आदि कई केमिकल्स का प्रयोग किया जाता है यह सर्वथा अनुचित है। दही, नीबु आदि के प्रयोग द्वारा भी उनकी चमक को कायम रखा जा सकता है।

शंका– मन्दिर परिसर में वैयक्तिक विज्ञापन (Advertisement) के लिए बैनर-पेम्पलेट आदि लगा सकते हैं?

समाधान– मन्दिर के परिसर में अथवा पूजन-अनुष्ठान आदि प्रसंगों पर किसी भी प्रकार के वैयक्तिक व्यापार आदि की Advertisement नहीं करनी

चाहिए। संगीतकार एवं भजन मंडलियों द्वारा धार्मिक आयोजनों में अपने बैनर लगाना या विज्ञापन पर्चों को बाँटना भी अनुचित है।

धार्मिक कार्यक्रमों, एवं धर्म जागरण आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ ही दी जा सकती है।

शंका– मंदिर का पट्ट मंगल होने के बाद खोल सकते हैं?

समाधान– सामान्यतया मंगल होने के बाद मन्दिर नहीं खोलना चाहिए। मध्याह्न के समय में यदि यात्री संघ आया हो तो मंदिर खोला जा सकता है किन्तु उसके बाद सूर्यास्त के पहले तक उसे मंगल नहीं करना चाहिए। कई तीर्थों पर मंदिर के दरवाजे बंद रखे जाते हैं और यात्री आने पर उन्हें खोल दिया जाता है और फिर उन्हें बंद कर दिया जाता है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि मन्दिरों की पूर्ण व्यवस्था पुजारियों की देख-रेख में होती है परिणामत: वे स्वच्छन्द मति से चलते हैं। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि मन्दिरों को यदि खुला रख दिया जाए तो फिर उनका ध्यान कौन रखेंगा? अत: मंगल करके नहीं खोलने का विधान लगभग सन्ध्याकालीन मंगल करने के विषय में होना चाहिए।

शंका– मन्दिर में चढ़ाए गए निर्माल्य द्रव्य के नियोजन के लिए शास्त्रीय मार्ग क्या है?

समाधान– मन्दिर के निर्माल्य द्रव्य को बाजार में बेचकर उसका उचित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। यदि दुकानदार से उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो रहा हो अथवा वहाँ के श्रावक वर्ग द्वारा भी उसे खरीदने की संभावना न हो तो ऐसी स्थिति में जैनाचार्य अन्य मार्ग भी निर्दिष्ट करते हैं।

तदनुसार जिस प्रकार परमात्म भक्ति एवं मन्दिर व्यवस्था हेतु अष्टप्रकारी पूजा के वार्षिक या मासिक चढ़ावे बोले जा हैं उसी तरह मन्दिर के निर्माल्य द्रव्य का भी चढ़ावा बोला जा सकता है। प्रत्येक महीने एकत्रित निर्माल्य का चढ़ावा बोलकर उस द्रव्य को अपंग, भिखारी आदि को देने अथवा अन्य अनुकंपा दान के कार्यों में प्रयोग कर सकते हैं। इससे देवद्रव्य की वृद्धि तो होती ही है, अनुकंपा दान का लाभ भी प्राप्त होता है।

सामान्यतया यदि निर्माल्य द्रव्य बेचा जाता है तो कुछ परमानेन्ट दुकानों में ही बेचना चाहिए। श्रावक वर्ग को भी उन दुकानों से सामान खरीदते हुए

विवेक एवं जागृति रखनी चाहिए।

शंका– जिन मन्दिर का काजा (कचरा) किससे निकालना चाहिए?

समाधान– जिन मन्दिर में काजा निकालने हेतु कोमल झाडु का प्रयोग करना चाहिए। मुलायम ऊन का डंडासन या मोरपंछी का भी प्रयोग कर सकते हैं। प्रयुक्त साधन जीव-जन्तुओं के लिए पीड़ादायक नहीं हो इसकी विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

शंका– पर्व के दिनों में मन्दिर कब मंगल करना चाहिए?

समाधान– पर्व दिवस धर्माराधना हेतु Golden period माना जाता है। जो लोग नित्य आराधना नहीं करते वे भी इन दिनों में धर्म-कर्म से जुड़ने का प्रयास करते हैं। पर्व काल में पूर्ण मनोयोग एवं निष्ठापूर्वक जिनाज्ञा का पालन होना चाहिए। इससे पर्वकाल में आराधना करने वालों की शुद्ध एवं सम्यक *आराधना हो सकती है तथा* उन्हें सही विधि का ज्ञान भी होता है। अत: उन दिनों में उत्सर्ग रूप से तो मन्दिर सूर्यास्त के समय बंद कर देना चाहिए। सामाजिक व्यवस्था या परिस्थिति विशेष के कारण यदि ऐसा करना संभव न हो तो श्रावक वर्ग को अपना विवेक रखना चाहिए।

शंका– जिन मन्दिरों में भंडार रखने की प्रथा कब से है?

समाधान– पूर्वकाल में राजा, श्रेष्ठि, नगर सेठ आदि के द्वारा मन्दिर भूमि, ग्राम, सोना, चाँदी आदि अर्पण किए जाते थे। रुपए रखने की परम्परा नहीं होने से भंडार की आवश्यकता भी नहीं होती थी। संभवतया चैत्यवासियों के समय में भंडार रखने की प्रथा प्रारंभ हुई होगी अथवा जब से नित्य प्रक्षाल का क्रम प्रारंभ हुआ और मन्दिरों में पुजारियों की व्यवस्था प्रारंभ हुई तब से और उनको मेहनताना देने हेतु भंडार व्यवस्था का सूत्रपात हुआ मालूम होता है।

शंका– वर्तमान में चोरी के बढ़ते भय को देखकर देव द्रव्य की सुरक्षा किस प्रकार की जाए?

समाधान– आजकल जिन मंदिरों में चोरी के दृष्टांत बढ़ते जा रहे हैं। अत: व्यवस्थापकों द्वारा समुचित व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक है। सर्वप्रथम तो भंडारों को हर सप्ताह खोलकर खाली कर देना चाहिए। इससे चोरी की संभावना कम हो जाती है। चाँदी के भंडार आदि को जमीन में फिट कर देना

चाहिए अन्यथा ऐसे भंडार नहीं रखने चाहिए। चाँदी एवं बहुमूल्य रत्न प्रतिमाओं को रखने हेतु लॉकयुक्त सुरक्षित व्यवस्था होनी चाहिए। चाँदी की आंगी आदि अन्य वस्तुएँ जिम्मेदार श्रावकों के हस्तगत रखनी चाहिए, मन्दिरों को पुजारियों के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए तथा उन्हें उचित मेहनताना देकर संतुष्ट रखना चाहिए। इस प्रकार जागरूकता एवं सतर्कता रखते हुए देव द्रव्य की सुरक्षा की जा सकती है।

शंका— जिनमन्दिर में पुजारियों का स्थान क्या होना चाहिए?

समाधान— आजकल श्रावकों की पुजारियों पर निर्भरता देखते हुए यही प्रतीत होता है कि जिनमन्दिर स्वयं की आराधना हेतु नहीं अपितु पुजारियों के लिए बनाए गए हैं। मन्दिर के द्वारोद्घाटन से लेकर प्रक्षाल, पूजा, आरती आदि सभी कर्तव्य पुजारी के होते हैं। श्रावक तो केवल प्रभु दर्शन-पूजन की रस्म अदा करने जाते हैं। परंतु यह एक अनुचित परम्परा है। इस प्रकार वेतनभोगी कर्मचारियों के भरोसे मन्दिर के समस्त कार्य छोड़ने से वीतराग परमात्मा के प्रति अहोभाव समाप्त होते जा रहे हैं। यथार्थतः सामान्य मन्दिरों में पुजारी नहीं भी हो तो चल सकता है। जिस प्रकार बालक के समस्त कार्य माता के द्वारा उल्लास एवं जागृतिपूर्वक किए जाते हैं उसी तरह श्रावकों को मन्दिर के सभी छोटे-बड़े कार्य जयणा एवं भक्तिपूर्वक स्वयं को सम्पन्न करने चाहिए।

जिस समय से त्रिकाल पूजा के क्रम में परिवर्तन आया है तब से मन्दिरों में पुजारियों की आवश्यकता भी बढ़ गई है। आज मन्दिरों में श्रावक हो या न हो पुजारी होना जरूरी है। यदि दो दिन के लिए भी पुजारी छुट्टी पर चला जाए तो सब की हालत पस्त हो जाती है। यदि गंभीरतापूर्वक इस विषय में विचार करें तो आज मन्दिरों में आशातनाएँ बढ़ती जा रही है। पुजारी तो प्रत्येक कार्य मात्र पैसे के लिए करता है। प्रातःकाल में मन्दिर के उद्घाटन से लेकर समस्त कार्य उनके द्वारा कर्तव्य बुद्धि से नहीं अपितु काम को निपटाना है इस रूप में अविधिपूर्वक किए जाते हैं। पंचधातु की प्रतिमा एवं गट्टाजी आदि तो इस प्रकार उठाए जाते हैं मानो कोई खिलौना उठा रहे हो, बिना नहाएं एवं पूजा के वस्त्र पहने मूल गंभारे में जाना उनके लिए आम बात है तथा अधिकांश पुजारियों के कपड़े हलवाई से भी बदतर हालत में होते हैं।

इन परिस्थितियों में मूर्तियों एवं मन्दिरों का प्रभाव न्यून होता ही है और यदि अब भी श्रावक वर्ग नहीं जागा तो वह दिन दूर नहीं जब जैन मन्दिर मात्र पुजारियों की सम्पत्ति बनकर रह जाएंगे। अतः आज जो स्थान पुजारियों को दिया जा रहा है, जितनी निर्भरता हमारी पुजारियों पर हो गई है वह सर्वथा अनुचित है। सर्वप्रथम तो जिन मन्दिरों में पुजारियों की आवश्यकता ही नहीं है और यदि किसी संघ को व्यवस्था हेतु रखना आवश्यक भी प्रतीत होता है तो श्रावकों को अपना पूर्ण समय एवं भोग जिनमन्दिर की व्यवस्था में देना चाहिए।

शंका– पुजारी आदि कर्मचारियों को वेतन किस द्रव्य में से देना चाहिए?

समाधान– मन्दिर के पुजारी आदि का वेतन श्रावकों को स्व राशि से देना चाहिए क्योंकि पुजारियों की व्यवस्था मात्र श्रावकों की सुविधा के लिए है। देवद्रव्य की राशि से पुजारियों को पगार नहीं देनी चाहिए। वैसे साधारण खाते से यह कार्य किया जा सकता है।

शंका– पुजारी कैसा होना चाहिए?

समाधान– पुजारी के रूप में नियुक्त करने वाले व्यक्ति के लिए पहले से यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह व्यसन सेवी न हो, सदाचारी हो, अच्छी संगति में रहता हो, भक्ति-भाव वाला हो, जिन मंदिर सम्बन्धी नियम-मर्यादाओं का ज्ञाता एवं यथोचित पालन करने वाला हो, नम्र स्वभावी एवं मृदु भाषी हो। प्रमाद, लालच, चोरी आदि दुर्गुणों से रहित हो। क्योंकि ऐसा पुजारी ही मन्दिर के लिए लाभकारी हो सकता है। व्यसनसेवी पुजारी मन्दिर को हानि पहुँचा सकता है अथवा किसी अप्रिय घटना में भी हेतुभूत बन सकता है।

शंका– जिनमंदिर खोलने के साथ सर्वप्रथम क्या करना चाहिए?

समाधान– जिनमन्दिर खोलते ही सर्वप्रथम काजा निकालना चाहिए। काजा निकाले बिना मन्दिर सम्बन्धी कोई भी क्रिया की जाए तो महादोष लगता है।

शंका– शास्त्रानुसार प्रक्षाल का यथोचित समय कौनसा है?

समाधान– विधि ग्रन्थों के अनुसार जब सूर्य की किरणों का मूल गर्भगृह में प्रवेश हो जाए उसके बाद परमात्मा का प्रक्षाल करना चाहिए। इससे सूक्ष्म जीवों की हिंसा नहीं होती तथा वातावरण में व्याप्त नमी, अशुद्धता आदि भी

सूर्य ताप से दूर हो जाती है। वर्तमान में जगह की कमी, लोगों की व्यस्तता एवं शास्त्रोक्त विधि से जिनमन्दिरों का निर्माण न होने के कारण इन नियमों का पालन नहींवत होता है।

शंका– पुराने अंगलूंछन वस्त्रों का क्या करना चाहिए?

समाधान– संभव हो तो मूलनायक भगवान के लिए प्रतिदिन नए अंगलूंछन वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए ऐसा विधान है। यह मूलनायक भगवान की सर्वोच्चयता एवं उनके प्रति बहुमान भाव को अभिव्यक्त करता है। पुराने अंगलूंछन वस्त्र मन्दिर के अन्य कार्यों हेतु प्रयोग में लिए जा सकते हैं। परंतु फटे हुए, गले हुए या एकदम पीले हो चुके अंगलूंछन वस्त्रों का उपयोग परमात्मा हेतु नहीं करना चाहिए।

●

अध्याय-7

पूजन-महापूजन प्राचीन या अर्वाचीन?

शंका– भक्ति सूत्र रूप काव्य रचनाओं पर पूजन पढ़ा सकते हैं?

समाधान– काव्य रचना या भक्ति सूत्र भी एक प्रकार की परमात्म पूजा है। इनका समावेश भाव पूजा में होता है। सुविहित आचार्यों द्वारा रचित एवं मान्यता प्राप्त भक्ति सूत्रों पर पूजन आदि करवाएं जा सकते हैं। जैसे कि भक्तामर महापूजन, जयतिहुअण महापूजन, नमिऊण महापूजन आदि। स्वमति के अनुसार किसी भी नए पूजन का निर्माण या प्रचलन करना अनुचित है।

शंका– वर्तमान प्रचलित कुमारपाल महाराजा की आरती कितनी औचित्यपूर्ण है?

समाधान– ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार कुमारपाल महाराजा बहुत ही भव्य रूप में नगरवासियों के साथ परमात्मा की आरती करने जाते थे। उसी का अनुकरण करते हुए वर्तमान में कुमारपाल राजा की आरती का प्रचलन बढ़ गया है। परंतु यदि यथार्थ का अन्वेषण किया जाए तो हम मात्र आडम्बर एवं वस्त्राभूषण आदि में ही उनका अनुसरण करते हैं जबकि इसका मुख्य ध्येय कुमारपाल महाराजा के समान बनने का होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को मात्र चढ़ावे के आधार पर कुमारपाल बनाने से महापुरुषों का अवमूल्यन होने की संभावना रहती है। जो व्यक्ति कुमारपाल बना है वह यदि मेकअप के लिए ब्यूटी पार्लर जाता है और हिंसक सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग करता है तो फिर वह कुमारपाल का प्रतिरूप कैसे बन सकता है? वह तो जीव दया के मुख्य सिद्धान्त को ही गौण कर रहा है। यदि चढ़ावा लेने वाले की सामाजिक साख या व्यवहार अच्छा न हो तो यह जन हिलना का भी कारण बन सकता है।

ऐसे आयोजन यदि पूर्ण विवेक एवं उपयोगपूर्वक किए जाएं तो यह महती शासन प्रभावना में हेतुभूत बन सकते हैं। इनके द्वारा श्रावकों के समक्ष एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है वहीं अन्य धर्मियों के मन में जिनधर्म के प्रति

अहोभाव उत्पन्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार यदि व्यक्तित्व निर्माण, संस्कार जागरण आदि की अपेक्षा से इन महापुरुषों का अनुकरण किया जाए तो वह उचित है लेकिन यही अनुष्ठान केवल अहं पुष्टि, आडम्बर एवं साज-सज्जा के उद्देश्य से किए जाएं तो सर्वथा अनुचित है।

शंका– अठारह अभिषेक करने के बाद ही फोटो-प्रतिमा आदि पूजनीय होते हैं?

समाधान– प्रचलित परम्परा के अनुसार तो अठारह अभिषेक के बाद या पहले भी फोटो-प्रतिमा आदि की पूजा विधि की जा सकती है। शास्त्रानुसार जिन प्रतिमाओं या चित्रों का अभिषेक संभव न हो तो उनके प्रतिबिम्बों को दर्पण में देखते हुए उसका अभिषेक करने पर भी वह पूजनीय बन जाते हैं। अभिषेक किए बिना फोटो आदि दर्शनीय तो हो सकते हैं परंतु शास्त्रीय नियमों की एक वाक्यता के लिए अभिषेक किए हुए फोटो की ही पूजा करनी चाहिए।

शंका– वर्तमान में बढ़ते पूजन-महापूजन जिनशासन की महिमा वर्धन में कितने सहायक हैं?

समाधान– किसी भी धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रम का अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता से इंकार नहीं है परन्तु उसकी सार्थकता तभी है जब उसका कोई सुपरिणाम सामने आए। यह तभी संभव है जब किसी भी कार्यक्रम के पीछे मात्र भीड़ इकट्ठा करने का उद्देश्य न हो बल्कि जन मानस परिवर्तन की भावना हो। आजकल महोत्सव तो बढ़ रहे हैं किन्तु मर्यादाएँ टूट रही है। पूजन-महापूजन आदि के आयोजन का मुख्य उद्देश्य सांसारिक कामनाओं की पूर्ति रह गया है। पार्श्वनाथ पूजन हो या गौतम स्वामी पूजन या फिर पद्मावती महापूजन सभी आध्यात्मिक उद्देश्यों से हटकर सांसारिक वृत्तियों को बढ़ा रहे हैं। अधिकांश पूजनों में वीतराग प्रभु को गौण कर मात्र देवी-देवताओं का ही गुणगान किया जाता हैं तथा मंत्र आदि महत्त्वपूर्ण विभाग को भी हड़बड़ में फटाफट पूर्ण किया जाता है। इन सबसे लोगों का रूझान वीतराग परमात्मा की तरफ से हटकर देवी-देवताओं की तरफ बढ़ रहा है एवं जन मानस में भ्रान्त मान्यताएँ प्रसरित हो रही है। अत: यह कह सकते हैं कि वर्तमान प्रचलित अधिकांश पूजन-महापूजन जिनशासन एवं जिनेश्वर परमात्मा के कीर्तिवर्धन की अपेक्षा देवी-देवता, विधिकारक एवं संगीतकार

पार्टियों का यशवर्धन अधिक कर रहे हैं।

शंका– स्नात्र पूजा में पंच कल्याणक का समावेश कैसे है?

समाधान– स्नात्र पूजा करते हुए चौदह स्वप्न का वर्णन एवं शक्रस्तव के द्वारा च्यवन कल्याणक की आराधना होती है। स्नान, विलेपन, दीप, दर्पण, पंखी आदि के द्वारा जन्म कल्याणक का अनुकरण किया जाता है। दीक्षा कल्याणक के समय देवदूष्य वस्त्र के अनुकरण रूप वस्त्र पूजा और शंख, वाजित्रं, इन्द्र ध्वजा आदि के द्वारा दीक्षा कल्याणक, आठ प्रातिहार्य, नैवेद्य, पूष्प पूजा, अष्ट मंगल आदि करके केवलज्ञान कल्याणक तथा परमात्मा की उत्कृष्ट सिद्ध अवस्था का स्मरण करते हुए स्तुति, स्तवन, चैत्यवंदन आदि के द्वारा निर्वाण कल्याणक का वर्णन किया जाता है। इस प्रकार स्नात्र पूजा में पाँचों ही कल्याणक की भाव आराधना की जाती है।

शंका– प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, महापूजन आदि अनुष्ठानों के समय डाभ (नारियल) में क्षेत्रपाल की स्थापना क्यों?

समाधान– डाभ को देवताओं का प्रिय फल माना जाता है। लोक व्यवहार में भी श्रीफल को उत्तम फल की उपमा दी गई है। हरा नारियल नया होने से दीर्घ जीवी होता है तथा देव भी दीर्घ जीवी होते हैं अतः महापूजन आदि में डाभ को देव रूप में स्थापित किया जाता है। अंजनशलाका आदि विधानों में हरे नारियल की जगह चोटी वाला नारियल स्थापित किया जाता है क्योंकि अंजनशलाका आदि बृहद अनुष्ठानों में स्थापना 7-8 दिन के लिए की जाती है। हरे नारियल के जल्दी खराब होने की संभावना रहती है वही चोटी वाला नारियल लम्बे समय तक टिक सकता है अतः अंजनशलाका आदि विधानों में चोटी वाले नारियल की स्थापना की जाती है।

शंका– शांति स्नात्र करवाने के बाद छह महीने तक वेदिका यथावत क्यों रखी जाती है?

समाधान– वृद्ध परम्परा के अनुसार शान्ति स्नात्र का प्रभाव छह महीने तक बना रहे तो वहाँ पर शुद्धता व्याप्त हो जाती है। वेदिका को छह महीने तक अखंडित रखने का अन्य हेतु उस स्थान की पवित्रता को बनाए रखना भी है। वेदिका के कारण उस स्थान पर किसी के पैर नहीं आते और वह स्थान चिरकाल के लिए पवित्र बना रहता है।

●

अध्याय-8

कैसे बचें विराधना से?

शंका– स्नात्र जल कहाँ लगाना चाहिए? और इसका महत्त्व क्यों है?

समाधान– सामान्यतया परमात्मा की पूजा के बाद न्हवण जल को मस्तक आदि अंगों पर लगाने का विधान है। बृहद शान्ति के अनुसार शान्ति कलश के जल को 'शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यं' तथा धर्मसंग्रह में शान्ति जल को प्रत्येक अंग पर लगाने का उल्लेख है। व्यवहारत: नाभि के ऊपरी अंगों पर न्हवण जल लगाया जाता है। यह परमात्मा के प्रति श्रद्धा एवं बहुमान का प्रतीक है। जिनबिम्ब से स्पर्शित जल पवित्र परमाणुओं द्वारा सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है। इसके द्वारा हमारे अंगों में परमात्मा के निर्मल गुणों का वास होता है। शारीरिक रोगों से मुक्ति एवं मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। कथा साहित्य में भी न्हवण जल के प्रभाव से कृष्ण द्वारा जरा निवारण, अभयदेवसूरि के कुष्ट निवारण तथा रामायण में दशरथ के द्वारा रानियों को शान्ति स्नात्र जल भेजने का दृष्टांत प्रसिद्ध है। इस तरह स्नात्र जल का महत्त्व सुस्पष्ट है।

शंका– प्रक्षाल क्रिया करते समय न्हवण लगा सकते हैं?

समाधान– कई लोग चालू प्रक्षाल क्रिया में भी प्रक्षालित जल को अंगों पर लगा लेते हैं, यह एक अनुचित क्रिया है। इससे सम्पूर्ण प्रक्षाल जल पसीने आदि से अशुद्ध हो जाता है। इसी के साथ परमात्मा का अविनय एवं अनादर होता हैं। अत: न्हवण जल को किसी जल पात्र में लेकर उसके बाद ग्रहण करना चाहिए।

शंका– परमात्म पूजा में उपयोगी केसर-चंदन से श्रावक तिलक लगा सकते हैं?

समाधान– नियमत: परमात्म पूजा एवं श्रावक के तिलक हेतु केसर अलग-अलग होनी चाहिए। यदि केशर आदि साधारण या वैयक्तिक द्रव्य से अर्पित हो तो श्रावकों द्वारा उसका उपयोग करने में कोई दोष नहीं है। वहीं यदि

देव द्रव्य की राशि से चंदन आदि की व्यवस्था की गई हो तो श्रावकों द्वारा उसका उपयोग करना दोषपूर्ण होता है। जो श्रावक मन्दिर के द्रव्य का प्रयोग करते हैं उन्हें उतने परिमाण की राशि देवद्रव्य में जमा कर देनी चाहिए।

शंका– पूजा के भाव से बनियान, स्वेटर, पेन्ट-शर्ट आदि पहनकर मूल गंभारे में प्रवेश कर सकते हैं?

समाधान– पूजा हेतु श्रावकों को अखंड एवं बिना सिले हुए वस्त्र (धोती, दुपट्टा) पहने का विधान है। पैन्ट-शर्ट, कुर्ता-पायजामा, स्वेटर या बनियान आदि पहनकर पूजा करना अविधि एवं दोष पूर्ण है। श्रावक एवं पुजारी दोनों को मूल गंभारे में पूजा के वस्त्रों में मुखकोश बांधकर ही प्रविष्ट होना चाहिए।

शंका– पूजा के वस्त्रों में सामायिक कर सकते हैं?

समाधान– पूजा के वस्त्रों में सामायिक नहीं करनी चाहिए। शास्त्रानुसार सामायिक के वस्त्र सूती होने चाहिए और पूजा के वस्त्र रेशमी। पूजा के वस्त्र पहनकर सामायिक करने पर मन की भावधारा उतनी अच्छे से जुड़ नहीं सकती। सामायिक में एक ही जगह पर अधिक समय तक बैठने के कारण पसीने आदि से वस्त्र मलिन हो जाते हैं ऐसे वस्त्र पहनकर पूजा करने से परमात्मा की आशातना होती है। यदि कारण विशेष से पूजा के वस्त्र अधिक समय के लिए पहनने पड़े तो उन्हें धोकर फिर प्रयोग में लेना चाहिए।

शंका– रोग आदि के निवारण हेतु न्हवण जल पी सकते हैं?

समाधान– न्हवण जल परमात्मा का निर्माल्य द्रव्य है। अत: रोगादि उपशमन या किसी अन्य हेतु से खाने-पीने में इसका प्रयोग नहीं हो सकता। रोग आदि होने पर पूर्वकृत कर्मों का उदय मानकर समभावपूर्वक उन्हें सहज करना चाहिए। रोगोपशमन के लिए न्हवण जल पीना दोषपूर्ण है। परमात्मा के न्हवण जल को मस्तक आदि श्रेष्ठ अंगों पर लगा सकते हैं।

शंका– जिनालय में कौनसा जाप कर सकते हैं?

समाधान– जिनालय में नवकार मंत्र, सिद्धचक्र, बीस स्थानक आदि नवपदों का जाप कर सकते हैं, परंतु संघीय जिनालय यदि छोटा हो और दर्शनार्थियों की संख्या अधिक हों तो जाप आदि क्रिया वहाँ नहीं करनी चाहिए। यदि करें तो ऐसे समय और स्थान में करनी चाहिए की अन्य लोगों को क्लेश उत्पन्न न हो।

सामान्यतया अपने घर या उपाश्रय में सामायिक लेकर जाप करना चाहिए। गृह मन्दिरों के विधान का एक मुख्य कारण यह भी है। परमात्मा के समक्ष देवी-देवताओं का जाप नहीं करना चाहिए। इससे परमात्मा की लघुता आदि का दोष लगता है। जिनेश्वर परमात्मा का नाम सुमिरण ही समस्त आपदाओं के निवारण में सक्षम है।

शंका– मन्दिर के गंभारे के बाहर A.C. कूलर या पंखा क्यों नहीं लगाना चाहिए?

समाधान– गृह मंदिर हो, संघ मन्दिर हो अथवा उपाश्रय वहाँ पर A.C. कूलर आदि साधन लगाना अनुचित है। भक्ति का मार्ग साधना का मार्ग है। इसमें मन को बाह्य प्रवृत्तियों से हटाकर भीतर की ओर साधा जाता है। बाह्य साधनों की अनुकूलता शरीर को आराम पहुँचाती है, प्रमादी बनाती है। भक्ति का लक्ष्य शरीर को नहीं मन को आराम पहुँचाना है। उसे अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव में रहने हेतु प्रशिक्षित करना है। A.C. आदि साधनों के प्रयोग से मनोजयी एवं इन्द्रियजयी बनने का लक्ष्य सध नहीं सकता। इसी के साथ अकारण अनेक जीवों की हिंसा होती है।

जैन धर्म की साधना का मूल उद्देश्य प्रतिकूलताओं को स्वीकार एवं उस साँचे में स्वयं को ढालकर उस पर विजय प्राप्त करना है। अत: साधना स्थलों पर A.C. आदि साधनों के प्रयोग का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यदि मन्दिरों का निर्माण शास्त्र मर्यादा अनुसार किया जाए तो इन साधनों की आवश्यकता ही नहीं रहती।

शंका– गृह मन्दिर में गणेशजी, लक्ष्मीजी आदि की स्थापना कर सकते हैं?

समाधान– जैन मन्दिरों में वीतराग परमात्मा, निर्ग्रन्थ सद्गुरु शासन रक्षक सम्यक्त्वी देवी-देवताओं की स्थापना शिल्प विधि के अनुसार की जा सकती है। अन्य धर्मी देवी-देवताओं एवं गुरुओं की मूर्ति स्थापित करने से मिथ्यात्व का पोषण होता है। जिनेश्वर परमात्मा और जैन धर्म की लघुता होती है। कई स्थानों पर ऐसे मन्दिरों का निर्माण किया जाता है। जहाँ पर अन्य परम्परा के मन्दिर भी साथ में बनाए जाते हैं। श्रावक वर्ग को पूर्ण सावधानीपूर्वक ऐसे स्थानों में दर्शन आदि करने चाहिए क्योंकि वहाँ मिथ्यात्व की तरफ झुकाव होने

की पूर्ण संभावना रहती है।

शंका– अन्य धर्मों की ओर आकृष्ट जैनों को स्वधर्म से जोड़ने के लिए यदि पृथक-पृथक वारों में विविध सम्यक्त्वी देवी-देवताओं की साधना बताई जाए तो क्या दोष है?

समाधान– जिसने जैन धर्म के मूल हार्द को नहीं समझा है और जिनेश्वर परमात्मा की शक्ति को नहीं पहचाना है वही कामनापूर्ति के लिए इधर-उधर भटकने का कार्य करता है। जैन धर्म भोगों से विरक्ति एवं संसार मुक्ति का संदेश देता है और उसी तरह की आराधना का निरूपण करता है। वहीं अन्य धर्मों में भोगप्राप्ति, इच्छापूर्ति एवं संसार वृद्धि की बुद्धि से साधना की जाती है। परंतु जैन धर्म में पौद्‌गलिक लालसाओं के पोषण अथवा सांसारिक सुखों के वर्धन का मार्ग कहीं भी नहीं बताया गया है।

सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए जिनेश्वर परमात्मा, निर्ग्रन्थ गुरु एवं शासन रक्षक देवी-देवताओं की आराधना करना सर्वथा अनुचित एवं मूर्खता का परिचायक है। ज्ञानियों ने इसे धान्य छोड़कर घास और तृण को ग्रहण करने के समान बताया है। इन भ्रामक परिस्थितियों में अन्यत्र जा रहे लोगों को सही मार्ग एवं वीतराग धर्म का मर्म और रहस्य बताकर सन्मार्ग पर लाना अधिक उचित है।

शंका– पहले भाव पूजा और बाद में द्रव्य पूजा कर सकते हैं?

समाधान– पूजा के क्रम में सर्वप्रथम द्रव्य पूजा और तदनन्तर भाव पूजा की जाती है। उसमें भी पहले अंग पूजा फिर अग्र पूजा और उसके बाद भाव पूजा करनी चाहिए। कारण विशेष होने पर यदि क्रमान्तर किया जाए तो क्षम्य है परन्तु स्वेच्छा से सुविधा के लिए क्रम परिवर्तन करना सर्वथा अनुचित है। प्रक्षाल के बाद अंगलुंछण आदि कार्यों में समय लगेगा यह सोचकर पहले अग्र पूजा और भाव पूजा को फटाफट निपटा देना, परमात्मा का अविनय एवं अपमान है। यदि हर कोई ऐसा करने लग जाए तो इससे मूलविधि का ही लोप हो जाएगा। किसी भी कार्य को यथाविधि करने पर ही यथोचित परिणाम प्राप्त होता है।

शंका– अंगलूंछण करते हुए तथा केशर घिसते हुए पसीना आए तब क्या करना चाहिए?

समाधान– जिन्हें अधिक पसीना आता हो और वह पसीना यदि जिनबिम्ब आदि पर टपकता हो तो ऐसे भक्त जनों को अंगलुंछण आदि कार्य नहीं करने चाहिए अथवा थोड़ी-थोड़ी देर में बाहर आकर शुद्ध वस्त्र से पसीना पोंछते रहना चाहिए। चंदन घिसने की व्यवस्था यथासंभव हवादार स्थानों में करनी चाहिए। यदि वैसा संभव न हो तो पूर्ण उपयोग पूर्वक पसीने को पोंछकर फिर चंदन घिसना चाहिए। वर्तमान में कहीं-कहीं पर मन्दिरों में पंखों का उपयोग देखा जाता है यह औचित्यपूर्ण नहीं है।

शंका– जैन शास्त्रों में रात्रि जागरण का उल्लेख है तो फिर मन्दिरों में रात्रि जागरण या भक्ति क्यों नहीं हो सकती?

समाधान– जैन साहित्य में तपस्या के उजमणे (उद्यापन), कल्पसूत्र, पालनाजी आदि की भक्ति हेतु रात्रि जागरण करने का उल्लेख है, किन्तु वे जागरण घरों में करवाए जाते हैं। जिन मन्दिरों में रात्रि जागरण का विधान जैनागमों में कही भी नहीं है। संघ पट्टक और हीर प्रश्न में रात्रि को मन्दिर खुले रखने का निषेध है। रात्रि में ईर्यासमिति का पालन संभव नहीं है अतः सूर्यास्त के बाद जिनमन्दिर खुले रखने या जागरण करवाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। कुछ लोगों के मन में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि देवताओं द्वारा मन्दिरों में रात्रि भक्ति करने की बात प्रसिद्ध है फिर हम लोग क्यों नहीं कर सकते? देवता एवं मानव में कई भिन्नताएँ हैं। देवता अवधिज्ञानी एवं आकाशगामी होते हैं। वे भूमि से चार अंगुल ऊपर रहकर गीत, नृत्य आदि करते हैं। विशिष्ट शक्तियों द्वारा सूक्ष्म जीवों को भी देख सकते हैं। उनके आचारों की तुलना मनुष्य के आचार से नहीं की जी सकती।

शंका– जिन मन्दिर में माला फेरना चाहिए या नहीं?

समाधान– श्रावकों को जिनमन्दिर में चैत्यवंदन करने तक ही रूकने का विधान है अधिक समय तक रूकने से वायु आदि निकलने की संभावना रहती है। स्थान की संकीर्णता होने पर अन्य लोगों के लिए अंतराय एवं क्लेश का कारण उपस्थित हो सकता है। माला गिनते समय ध्यान मग्नता एवं एकाग्रता की आवश्यकता होती है, मन्दिर में लोगों के बार-बार आगमन के कारण चित्त की स्थिरता दुष्कर है। अतः माला आदि गृह चैत्य में ही गिननी चाहिए। यदि किसी के घर में अनुकूलता न हो और मन्दिर में सहज स्थान की प्राप्ति होती

हो तो अपवाद रूप में वहाँ भी माला गिन सकते हैं।

शंका– चल प्रतिमा की प्रक्षाल आदि क्रियाएँ मूल गंभारे के बाहर कर सकते हैं?

समाधान– चल प्रतिमाओं की प्रक्षाल, अंगलूंछणा पूजा आदि क्रियाएँ मूल गंभारे के बाहर पट्टा, चोकी आदि पर थाली में विराजमान करके करनी चाहिए। ऐसा करने से परमात्मा के प्रति विनय एवं बहुमान प्रकट होता है। मूल गंभारे में कई बार स्थान की संकीर्णता के कारण चल प्रतिमाओं को बार-बार उठाना पड़ता है जिससे मन्दिर सम्बन्धी अनेक आशातनाओं की संभावना रहती है। अत: बाहर मूल गंभारे के प्रक्षाल करना अधिक उचित है।

शंका– जूते-चप्पल पहनकर पूजा करने जा सकते हैं?

समाधान– जैन धर्म जयणा प्रधान धर्म है। मन्दिर जाते समय श्रावक वर्ग को ईर्यासमिति का पालन करते हुए खुले पैर मन्दिर जाना चाहिए। इस विधान के पीछे कई आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक हेतु जुड़े हुए हैं।

जीवों की जयणा रखते हुए मन्दिर जाने से मन में विशुद्ध परिणामों का निर्माण होता है। जीवों के प्रति करूणा भाव होने से कर्म ग्रन्थियाँ क्षीण होती है। इससे जीव आध्यात्मिक उत्थान को प्राप्त करता है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार नंगे पैर चलने पर सहज रूप से सम्पूर्ण शरीर का एक्युप्रेशर हो जाता है, जिससे कई शारीरिक रोगों का भी उपशमन होता है। मिट्टी में रहे हुए खनिज पदार्थ (minerals) आदि का पोषण होता है। मन्दिर जाते समय जूते चप्पल आदि पहने हुए हो तो मानसिक रूप से भी एकाग्रता नहीं रहती। चप्पल नई हो तो बार-बार ध्यान उसकी तरफ जाता है और यदि वह खो जाए तो फिर आन्तरिक परिणाम गिर जाते हैं। कई बार तो बात हाथा-पाई तक पहुँच जाती है। कई लोग चप्पलों की सुरक्षा के लिए उन्हें मन्दिर और उपाश्रय के परिसर में भी ले जाते हैं। मानसिक हलचल के कारण जिनपूजा का यथोचित फल प्राप्त नहीं हो पाता। एक व्यक्ति को जूते-चप्पल पहनकर जाते हुए देख अन्य लोग भी उसका अनुकरण कर सकते हैं, इससे अनवस्था दोष लगता है। अत: पूजार्थियों के लिए किसी भी अपेक्षा से जूते-चप्पल पहनकर जाना उचित नहीं है। यदि किसी को शारीरिक कारण विशेष से पहनकर जाना भी पड़े तो अपना विवेक रखते हुए पूजा के लिए अलग जूते रखने चाहिए।

शंका– मन्दिर दर्शन के लिए वाहन का प्रयोग कर सकते हैं या नहीं?

समाधान– जब जूते-चप्पल पहनकर पूजा करने नहीं जा सकते तो वाहन पर बैठकर जाना किस प्रकार मान्य हो सकता है? पूर्व काल में राजा-महाराजा भी अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ पैदल चलकर जिन मन्दिर जाया करते थे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि विचार किया जाए तो क्षेत्रों की बढ़ती व्यापकता एवं दूरियों के कारण जो लोग मन्दिरों से पाँच-दस किलोमीटर की दूरी पर रहते हैं उन लोगों के लिए पैदल आना संभव नहीं है। उनके लिए वाहन का प्रयोग करना अपवाद मार्ग है। किन्तु जिनके घरों की दूरी एक-डेढ़ किलोमीटर हो उन्हें पैदल ही जाना चाहिए।

जो लोग रिक्शा-स्कूटर आदि पर बैठकर पूजा करने जाते हैं उन्हें यदि मन्दिर में नहाने की सुविधा हो तो वहीं जाकर पूजा के वस्त्र पहनने चाहिए, रिक्शा आदि में वस्त्र अशुद्ध होने की पूर्ण संभावना रहती है।

शंका– शरीर में घाव हो तो पूजा कर सकते हैं?

समाधान– घाव में यदि पीप आदि रिसती हो तो परमात्मा की पूजा नहीं करनी चाहिए। यदि सामान्य चोट हो तो पट्टी खोलकर या नई पट्टी बाँधकर पूजा कर सकते हैं। पुरानी पट्टी बंधी हो तो पूजा नहीं करनी चाहिए।

शंका– प्लास्टिक की डिब्बियों में केशर-वासक्षेप आदि रखना उचित है?

समाधान– प्लास्टिक को एक अशुद्ध पदार्थ माना जाता है। प्रभु पूजा की सामग्री रखने हेतु उत्तम द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। अपने सामर्थ्य अनुसार सोना-चाँदी-तांबा या जर्मन सिल्वर की डिब्बियों का प्रयोग करना अधिक औचित्यपूर्ण है।

शंका– एक वर्ष से छोटे बच्चों को पूजा करवा सकते हैं?

समाधान– जन्म के 40 दिन पूर्ण होने के बाद नवजात शिशु को भी पूजा करवा सकते हैं। पूजा करवाते हुए यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि बच्चों को पूजा करवाने के बाद गंभारे से शीघ्र बाहर लेकर आ जाएं जिससे मल-मूत्र आदि के कारण उन्हें कोई दोष नहीं लगे।

शंका– मंदिर के पुजारी से श्रावक अपना व्यक्तिगत कार्य करवा सकते हैं?

समाधान– मन्दिर के पुजारी से व्यक्तिगत या गृह कार्य करवाना अनुचित

एवं अमानवीय है। इसमें देवद्रव्य के भक्षण का भी दोष लगता है। मन्दिर में आने के पश्चात पुजारी पर हुक्म चलाना, नौकरों की तरह उनसे व्यवहार करना, मालिकपना जताते हुए उन्हें एक कार्य के लिए आदेश देना सर्वथा अनुचित है। यथासंभव श्रावकों को अपने सभी कार्य स्वयं करने चाहिए। मन्दिर कार्यों के लिए भी पुजारी को प्रेम पूर्वक समझाना चाहिए।

शंका– जिन मन्दिरों में लाईटों का निषेध क्यों?

समाधान– आचारांग सूत्र में अग्निकाय को दीर्घकाय शस्त्र एवं सर्वभक्षी आदि उपमाओं से संबोधित किया गया है। विधि ग्रन्थों में मन्दिर में शीतल एवं सौम्य प्रकाश युक्त घृत दीपक रखने का निर्देश है। यदि शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार मन्दिर खोले एवं बंद किए जाए तो दीपक की भी आवश्यकता नहींवत रहती है।

बिजली निर्माण में षटकाय जीवों की हिंसा का दोष लगता है। कितने ही छोटे-छोटे जीव लाईट से आकर्षित होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं। जिनमन्दिर करुणा का उद्‌गम स्थल न रहकर हिंसा का कारखाना बन जाता है। लाईट की रोशनी से जिनमन्दिर के विशुद्ध परमाणु अशुद्ध बन जाते हैं। वातावरण की पवित्रता नष्ट हो जाती है। Focus Light आदि के प्रयोग से मूर्ति के प्रभाव और कान्ति में भी कमी आती है। कई बार यह आगजनी एवं भारी नुकसान में भी हेतुभूत बनती है। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखते हुए जिन मन्दिरों में लाईटों के प्रयोग का निषेध किया गया है। अत: मन्दिर में लाईटों का उपयोग करने से पूर्व श्रावक वर्ग को एक बार अवश्य चिंतन करना चाहिए।

शंका– प्रक्षाल हेतु पैकेट वाले दूध का उपयोग क्यों नहीं करना चाहिए?

समाधान– शास्त्रों में प्रक्षाल हेतु पंचामृत के प्रयोग का विधान है। वर्तमान में यह विधान केवल दूध तक ही सीमित रह गया है। प्रक्षाल हेतु गाय का शुद्ध दूध प्रयोग में लेना चाहिए। यदि उपलब्ध न हो तो भैस का दूध प्रयोग कर सकते हैं पर इसके अतिरिक्त पैकेट बंद या पाउडर वाला दूध उपयोग में नहीं लेना चाहिए। पैकेट बंद बासी दूध की अपेक्षा मात्र जल से प्रक्षाल करना ज्यादा लाभकारी है।

शंका– पूजा हेतु श्रावक स्वयं पुष्पों को चुनकर ला सकता है या नहीं?

समाधान– शान्तिनाथ चरित्र के अनुसार यदि शुद्ध पुष्प उपलब्ध न हों तो

श्रावक स्वयं भी पुष्प चुनकर ला सकता है अथवा घर में बगीचा आदि भी लगा सकता है परन्तु उनका प्रयोग केवल जिन पूजा के निमित्त ही करना चाहिए।

शंका– अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों के दिन मदिंर में फल आदि चढ़ा सकते हैं?

समाधान– यदि श्रावक समस्त सावद्य कार्यों से निवृत्त होकर पौषध ग्रहण कर ले तो उसे फल आदि कोई भी द्रव्य नहीं चढ़ाना चाहिए। कई लोग तर्क करते हैं कि जब हम अष्टमी, चौदस को हरा खाते नहीं तो फिर परमात्मा को कैसे चढ़ा सकते हैं? इसका सटीक जवाब तो यह है कि यदि हम उपवास करके घर और ऑफिस के सभी कार्य कर सकते हैं तथा Party, Metting और Functions भी attend कर सकते हैं तब फल क्यों नहीं चढ़ा सकते? इन्हें नहीं खाने के पीछे तो जीव रक्षा एवं त्याग की भावना होती है, वहीं मन्दिर में चढ़ाने के पीछे द्रव्य त्याग एवं आसक्ति को न्यून करने का उद्देश्य होता है। इसी के साथ उन जीवों को हमारी तरफ से अभयदान मिलता है एवं उन्हें परमात्मा की शरण प्राप्त होती है। पर्व दिवसों में अधिक उल्लास एवं वर्धित भावों से परमात्म भक्ति करनी चाहिए। सुस्पष्ट है कि अनाहारी पद प्राप्ति की इच्छा से पर्व दिवसों में फल चढ़ाए जाए तो कोई दोष नहीं है।

शंका– धूप आदि के कारण जले हुए वस्त्र पूजा में पहन सकते हैं या नहीं?

समाधान– श्रावक को पूजा हेतु उत्तम Quality के वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। शास्त्रों में जले, फटे, सांधे एवं सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग पूजा हेतु निषिद्ध है। कई लोगों की धारणा है कि पूजा की अधिक ड्रेस रखने पर आशातना होती है अतः वे पुराने वस्त्रों का ही प्रयोग पूजा हेतु करते रहते हैं। परंतु जिस प्रकार Party Wear कपड़े यदि एक-दो कार्यक्रमों में पहन लें तो फिर हमें नए चाहिए। हम वही कपड़े पहनकर वापस नहीं जाते, चाहे वह वस्त्र सामान्य दिनों में उपयोगी हो या न हो। इसी तरह की सोच हम पूजा के वस्त्रों के लिए क्यों नहीं रखते?

प्रश्न हो सकता है कि पुराने वस्त्रों का क्या करें? पुराने वस्त्र घर में पहनने हेतु प्रयोग में लिए जा सकते हैं या फिर साधार्मिक भाई बहिन को भी दे सकते हैं। आशातना तो तब लगती है जब हम पूजा की जोड़ कपाटों में बंद रखे और

उसका पहनने हेतु उपयोग नहीं करें। श्रावकों को हमेशा एक अतिरिक्त नई पूजा की जोड़ रखनी चाहिए ताकि कारण विशेष में पूजा का क्रम खण्डित न हो। पूजा के वस्त्रों को अन्य वस्त्रों से अलग रखना चाहिए।

शंका– जिनालय में गुरु महाराज को वंदन कर सुखशाता पूछ सकते हैं?

समाधान– जिन मन्दिर आदि में गुरु महाराज को वंदन कर सुखशाता नहीं पूछनी चाहिए। वंदन आदि क्रिया करने से उन्हें एवं अन्य लोगों को दर्शन में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अंतराय आने से कुछ लोगों के मन में विक्षेप भी उत्पन्न हो सकता है। इससे परमात्मा की आशातना भी होती है।

शंका– जिन मन्दिर होने पर भी दर्शन नहीं करें तो कितना प्रायश्चित्त आता है?

समाधान– श्री महाकल्पसूत्र के अनुसार कोई श्रमण, माहण या तपस्वी चैत्यघर (मंदिर) के दर्शन प्रमाद वश नहीं करें तो उसे बेले अथवा पाँच उपवास का प्रायश्चित्त आता है। यही प्रायश्चित्त पौषधधारी श्रावक के लिए भी निर्दिष्ट है। अत: मन्दिर दर्शन सभी के लिए आवश्यक है।

शंका– जिनपूजा-करते हुए भी उपसर्ग एवं अशुभ कर्मोदय का क्या कारण है?

समाधान– जिनेश्वर परमात्मा की आराधना से उपसर्गों का नाश एवं कर्मों का क्षय होता है। कई बार परमात्मा की पूजा भक्ति आदि करते हुए भी पूर्वबद्ध कर्मों के कारण अशुभ कर्मों का उदय एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही प्राप्त होती है। उस समय कई लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं कि इतना धर्म करते हैं फिर भी हमारे साथ कुछ अच्छा ही नहीं होता तो कुछ लोग यह कहते हुए भी सुने जाते हैं कि जब से धर्म करना चालू किया है तब से और ज्यादा पाप का उदय चल रहा है। किन्तु यह शाश्वत सत्य है कि धर्म करने से कभी पाप का उदय नहीं आता। वर्तमान में जैसा भी कर्मोदय चल रहा हो वह तत्समयवर्ती कर्मबन्ध का परिणाम नहीं होता वह तो अनेक पूर्वबद्ध कर्मों का प्रतिफल होता है।

सम्यक दृष्टि सम्पन्न श्रावक तो हंसते हुए उन कर्मों का भी क्षय करता है। वह विचारता है कि स्वकृत अच्छे और बुरे कर्म स्वयं को ही भोगने पड़ेंगे। जब धर्म बुद्धि जागृत हो और विपरीत कर्मों का उदय हो तब श्रावक उसमें कर्म निर्जरा ही करता है अन्यथा उन्हीं परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति बंधे हुए कर्मों

को अधिक प्रगाढ़ बना देता है। पूर्वकाल में साधक लोग तपश्चर्या-साधना आदि करके अशुभ की उदीरणा करते थे, यदि जिनपूजा करते हुए अशुभ कर्म उदय में आ रहे हैं तो 'यह विशिष्ट कर्म निर्जरा के क्षण हैं' ऐसा जानकर समस्थिति रखनी चाहिए।

अतः यह सुसिद्ध है कि जिनपूजा उपसर्गों का कारण नहीं अपितु अशुभ के क्षय का सोपान है।

शंका– मन्दिर में रखे हुए वस्त्रों से पूजा कर सकते हैं या नहीं?

समाधान– जैन शास्त्रों के अनुसार पूजा हेतु श्रावक को सामर्थ्य अनुसार उत्तम प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए तथा उपयोग के बाद उन्हें शुद्ध स्थान पर रखना चाहिए। मन्दिरों में रखे गए वस्त्र जहाँ-तहाँ फेंक दिए जाते हैं तथा अनेक लोगों द्वारा पहने हुए होने से उनके पसीने आदि से अशुद्ध भी हो जाते हैं। अतः ऐसे वस्त्रों का उपयोग यथासंभव नहीं करना चाहिए। व्यवस्थापकों को मन्दिर में रखे गए पूजा वस्त्रों की शुद्धि एवं उन्हें व्यवस्थित रखवाने का ध्यान रखना चाहिए। दूसरे व्यक्ति के वस्त्र पहनने हो तो बनती कोशिश धोकर पहनने चाहिए।

शंका– अविधि पूर्वक पूजा करने पर आंशिक लाभ होता है या नहीं?

समाधान– डॉक्टर के द्वारा दी गई दवाई यदि विपरीत रीति से ली जाए या निषिद्ध द्रव्य के साथ उसका सेवन किया जाए तो वह लाभकारी होगी या हानिकारक? English के पेपर में Maths के उत्तर लिख दें तो क्या आप पास हो सकते हैं? जैसे तैसे भी Mobile या Computer के बटन दबाने से कोई कार्य किया जा सकता है? यदि नहीं तो फिर अविधिपूर्वक पूजा करने से लाभ कैसे मिल सकता है? आशातना नहीं हो इस प्रकार की पूजा करने से ही लाभ होता है। मनोभावों की तरतमता के आधार पर ही फल की तरतमता होती है। विपरीत मनोभावों से विपरीत परिणाम ही प्राप्त होते हैं अर्थात लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

शंका– मन्दिर में दीपक के स्थान पर लाईट तथा नल का प्रयोग औचित्यपूर्ण है?

समाधान– आजकल अधिकांश मन्दिरों में विविध प्रकार की आधुनिक लाईटों का तथा नल के पानी का प्रयोग होने लगा है। जबकि शास्त्रानुसार मंदिरों

में शुद्ध घी के दीपक एवं कुएँ आदि के शुद्ध जल का भी जयणापूर्वक उपयोग करने का विधान है।

नल के पानी का प्रयोग प्रक्षाल आदि के लिए होने के साथ-साथ मन्दिरों की सफाई, बरतन आदि धोने एवं नहाने के लिए भी अजयणापूर्वक होने लगा है। जिन मन्दिरों में बाथरूम की व्यवस्था होती है वहाँ पूजा करने वालों की अपेक्षा दूसरे लोग अधिक नहाते हुए नजर आते हैं। जब कुँए आदि से पानी निकाला जाता था तो व्यक्ति आवश्यकता अनुसार ही उसका उपयोग करता था क्योंकि उसे निकालने के लिए उसे मेहनत करनी पड़ती थी। नलों से आती अनवरत पानी की धारा ने उसके उपयोग की मर्यादा समाप्त कर दी है। जहाँ एक बाल्टी से काम हो सकता है, वहाँ तीन बाल्टी पानी गिराया जाता है। मन्दिरों की सफाई में भी असीमित जल का प्रयोग होता है।

मन्दिरों में लाइटों का प्रयोग प्रारंभ होने के कारण दीपकों का प्रयोग नहींवत हो गया है। लाईट चली जाए तो Inverter या Generator आदि की सुविधा भी लाईट जलाने हेतु रखी जाती है। कई बार अनावश्यक लाईटें जलती रहती है। इन लाईटों के कृत्रिम प्रकाश में मूर्तियों का लावण्य एवं तेज न्यून हो रहा है। इसी के साथ वातावरण में गर्मी, अशुद्धता आदि बढ़ती जा रही है। अनेकशः छोटे-छोटे जीव लाईट पर आकृष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं। लाईट के द्वारा मन्दिर परिसर में निरंतर छःकाय जीवों की हिंसा होती रहती है। लाइटों के बाद अब पंखों का भी प्रवेश मन्दिरों में हो गया है। अतः मन्दिरों में लाईट एवं पानी के नल आदि का प्रयोग न होना ही अधिक औचित्यपूर्ण है।

शंका– महंगाई के जमाने में यदि घी की जगह बिजली का प्रयोग किया जाए तो क्या दोष? इससे देवद्रव्य की ही तो वृद्धि होगी?

समाधान– सर्वप्रथम तो मन्दिर में दीपक आदि के लिए देवद्रव्य की राशि का प्रयोग हो ही नहीं सकता। दीपक आदि श्रावक को स्व द्रव्य या साधारण द्रव्य से करने चाहिए। दूसरी बात खर्च कम करने के लिए हिंसक साधनों का प्रयोग कदापि उचित एवं मान्य नहीं है। हिंसा का प्रतिपादन करके खर्चा कम करने का विधान जैन शास्त्रों में नहीं है।

महंगाई बढ़ने पर भी जब घर के खाने-पीने, सुख-सुविधाओं में कोई कमी नहीं करते तो फिर मात्र मन्दिरों में ही डालडा घी या हल्की Quality के घी की

बात क्यों? अशुद्ध द्रव्य में अधिकता की अपेक्षा शुद्ध द्रव्य थोड़ा भी हो तो अधिक लाभकारी है। द्रव्य की शुद्धता से ही भावों की शुद्धता जुड़ी हुई है। मन्दिरों में अखंड दीपक रखने का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है। अत: उसे कारण बनाकर अशुद्ध द्रव्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि शास्त्रोक्त शिल्प विधि से मन्दिरों का निर्माण किया जाए एवं नियमानुसार उन्हें खोला एवं बंद किया जाए तो बिजली की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। हिंसा को बढ़ावा देकर देव द्रव्य की वृद्धि किसी भी प्रकार नहीं करना यही जिनाज्ञा है।

शंका– शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा से उतरा हुआ वासक्षेप श्रावक-श्राविका रोग निवारण आदि के लिए प्रयोग कर सकते हैं?

समाधान– शंखेश्वर पार्श्वनाथ या अन्य किसी भी जिन प्रतिमा के अंग से उतरा हुआ वासक्षेप श्रावक वर्ग न अपने मस्तक आदि पर ले सकता है और न ही रोग निवारणार्थ उसका उपभोग कर सकता है। परमात्मा पर चढ़ी वासक्षेप के प्रयोग से देव द्रव्य भक्षण का दोष लगता है। शास्त्रानुसार केवल भगवान के स्नात्र जल को श्रद्धा पूर्वक सिर पर लगा सकते हैं। इसका उल्लेख बड़ी शान्ति में भी आता है।

शंका– सजोड़े परमात्मा की पूजा करनी चाहिए या नहीं?

समाधान– जिनालय में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ऐसा शास्त्रों में वर्णन है। इस तथ्य के आधार पर मन्दिर में सजोड़े पूजा नहीं करनी चाहिए। भगवान के मन्दिर में राग-द्वेष और संसार को कम करने का प्रयत्न किया जाता है। यदि सजोड़े पूजा करते हुए कोई भी क्रिया संसार वृद्धि का कारण बनती हो तो किसी भी हालत में सजोड़े पूजा नहीं करनी चाहिए। यदि पति-पत्नी के ब्रह्मचर्य व्रत का नियम हो अथवा दोनों में से किसी एक को पूजा नहीं आती हो तो एक साथ पूजा करने में कोई दोष नहीं है परंतु मन्दिर की मर्यादाओं का पूर्ण ध्यान रखें। मन्दिर में पत्नी-परिवारवाद के भाव न आए यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए। संभवतया श्रावक-श्राविकाओं को एक दूसरे का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

शंका– परमात्मा की आंगी में Artificial Jewellery का उपयोग क्यों नहीं करना चाहिए?

समाधान– बेटी को दहेज में या बहु को शादी में सिर्फ Artificial

Jewellery देने से काम चल सकता है? यदि नहीं तो फिर परमात्मा के प्रति ऐसे हीन भाव क्यों? परमात्मा की भक्ति में तो अमूल्य रत्न, सोना, चाँदी आदि का उपयोग करना चाहिए। कई लोग तर्क देते हैं कि आजकल चोरियाँ इतनी बढ़ रही है कि मन्दिर के मूल्यवान वस्तुओं की सुरक्षा कैसे करें? किसी अपेक्षा वे लोग सही हैं कि चोरियाँ बढ़ गई है। परन्तु क्या चोरियों के डर से गृहस्थों ने सोना पहनना बंद कर दिया? जिस प्रकार गृहस्थ स्वद्रव्य की रक्षा करता है उसी सतर्कता एवं अपनत्व की भावना के साथ देव द्रव्य की रक्षा करें तो चोरी का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। जब मन्दिर निर्माण में लोहे का उपयोग नहीं हो सकता तो फिर साक्षात प्रतिमा के ऊपर लोहे से बने गहनों का प्रयोग कैसे हो सकता है?

शंका– धर्म के लिए धन का अर्जन करने में क्या दोष है?

समाधान– आचार्य हरिभद्रसूरि हारिभद्रीय अष्टक में कहते हैं–

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा, तस्यानीहा गरीयसी।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य, दूराद्स्पर्शनं वरम्।।

हारिभद्रीय अष्टक, 4/6

धर्म के लिए धन की इच्छा करना शुद्ध पैरों को कीचड़ में भरकर फिर उन्हें जल से धोने के समान है। इससे तो अच्छा यही है कि पैरों का कीचड़ से स्पर्श ही न होने दें। इसी प्रकार पहले पाप करके धन कमाने और फिर धर्म करके उस पाप का क्षय करने से तो अच्छा है कि वैसा धनार्जन किया ही न जाए। अतः यह स्पष्ट है कि धर्म को हेतु बनाकर धनार्जन नहीं करना चाहिए।

शंका– जिनमन्दिर में पूजा की सामग्री क्यों नहीं रखनी चाहिए?

समाधान– जिनमन्दिर में पूजा की पेटी आदि सामग्री रखना दोष पूर्ण है क्योंकि सर्वप्रथम तो श्रावक अपने घर से आवश्यक सामग्री जयणा पूर्वक साथ लेकर आए यह मूल विधि है। मूल मार्ग का अनुसरण करने से विधि की नियमितता बनी रहती है तथा भावोल्लास बढ़ता है। मन्दिर में नैवेद्य, बादाम आदि रखने से उसमें चीटियाँ आदि आने की संभावना रहती है। मार्ग में आ रहे अन्य मन्दिरों की द्रव्यपूजा के लाभ से भी वंचित रह जाते हैं। द्रव्य खत्म हो गया है यह ध्यान में न रहे तो उस दिन द्रव्य पूजा के लाभ से वंचित रह सकते हैं। इसी के साथ घर से द्रव्य लाते हुए देखकर मार्ग में अन्य लोगों को द्रव्य पूजा

की प्रेरणा मिलती है लेकिन यदि द्रव्य मन्दिर में ही रख दिया जाए तो यह कैसे संभव हो सकता है? अत: मन्दिर जाते हुए पूजा सामग्री साथ लेकर ही जाना चाहिए। अपवादत: यदि कोई स्कूल या ऑफिस जाते हुए पूजा करता हो और द्रव्य साथ में ले जाना संभव न हो तो श्रावक अपना विवेक रखें।

शंका– जिनमन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व पैर क्यों धोने चाहिए?

समाधान– जिनालय जाते समय नंगे पाँव चलने से पैर मार्ग में रही गंदगी से अशुद्ध हो जाते हैं। उस अशुद्धि के साथ मन्दिर में प्रवेश करने से मन्दिर भी अशुद्ध हो जाता है। जिनबिम्ब को अशुद्धि के साथ स्पर्श नहीं कर सकते अत: पूजार्थी के लिए पैर धोना आवश्यक है। दर्शनार्थी पाद पोंछन से पैर पोंछकर भी प्रवेश कर सकते हैं। पैर धोते समय यह विवेक अवश्य रखना चाहिए कि धोने के स्थान पर लीलन-फूलन या काई न हो तथा चींटियाँ न आती हो। पैरों को जहाँ धोए वहीं पर पोंछने चाहिए क्योंकि गीले पैरों से चलने पर सूक्ष्म जीवों की हिंसा हो सकती है। अत: पैर धोना एक आवश्यक क्रिया है परन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण है उसे धोते समय जयणा रखना।

शंका– मन्दिर जाते समय कैसे वस्त्र पहनने चाहिए?

समाधान– मन्दिर दर्शन हेतु शुद्ध एवं मर्यादा युक्त वस्त्र पहनने चाहिए। पुरुषों के लिए उत्तरासंग आवश्यक बताया गया है। सामर्थ्य के अनुसार श्रावकों को बहुमूल्य सूती वस्त्र पहनने चाहिए। उत्तरासंग के पल्ले से ही आठ पट्ट का मुखकोश बनाना चाहिए। श्रावकों के लिए अलग से मुखकोश बांधने का विधान नहीं है। पुरुषों को पूजा हेतु दो एवं महिलाओं को तीन वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। पूजा के वस्त्रों को अधिक समय तक पहने रहने पर पानी से अवश्य निकालना चाहिए। परमात्मा की पूजा हेतु फटे, सिले, सांधे या जले हुए वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। पूर्वकाल में पूजा हेतु रेशमी वस्त्रों का विधान था क्योंकि तब प्राकृतिक रूप से उपलब्ध निर्दोष रेशम से वस्त्र बनाए जाते थे परन्तु वर्तमान में रेशम की प्राप्ति के लिए जीवों को पीड़ित किया जाता है अत: सूती वस्त्रों के प्रयोग का भी निर्देश मिलता है।

शंका– पूजा के लिए स्नान करने के बाद कैसे वस्त्र से शरीर पोंछना चाहिए?

समाधान– पूजा हेतु स्नान करने के बाद शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछना

चाहिए। नित्य उपयोगी वस्त्र या अन्यों के द्वारा प्रयुक्त वस्त्र का उपयोग पूजा के समय नहीं करना चाहिए।

शंका– श्रावक को कहाँ-कहाँ पर तिलक लगाना चाहिए?

समाधान– दर्शनार्थी या पूजार्थी ललाट, कंठ, हृदय एवं नाभि पर तिलक कर सकते हैं। जिनाज्ञा के पालन हेतु ललाट पर, परमात्मा के गुणगान हेतु सुस्वर प्राप्ति के लिए कंठ पर, भाव विशुद्धि के लिए हृदय पर एवं श्वासोच्छावास की निर्मलता के लिए नाभि पर तिलक करना चाहिए। श्रावकों को दीपक की लौ के समान बादाम के आकार का एवं महिलाओं को बिन्दी के समान गोल तिलक लगाना चाहिए।

शंका– वीतराग परमात्मा एवं गुरु भगवन्तों के दर्शनार्थ जाते समय साफा-पगड़ी आदि पहन सकते हैं?

समाधान– गुरु महाराज आदि के पास जाते समय साफा-पगड़ी आदि के त्याग का कोई विधान देखने में नहीं आया है। आरती आदि के समय मन्दिर में साफा पहनाया जाता है। अत: इसमें कोई दोष नजर नहीं आता। शंका उत्पन्न हो सकती है कि शास्त्रों में राजा द्वारा मुकुट त्याग का वर्णन क्यों किया गया है? इसका समाधान यह है कि राजा के लिए मुकुट, छत्र आदि के त्याग का विधान विनय की अपेक्षा से किया गया है। राजा को नरपति या श्रेष्ठ पुरुष माना जाता है। मुकुट आदि उसकी श्रेष्ठता के प्रतीक हैं। परमात्मा के समक्ष सेवक बनकर जाना चाहिए। राजा भले ही इस लोक का स्वामी है किन्तु परमात्मा के सामने सेवक के समान है अत: उसे राजचिह्नों का त्याग करके मन्दिर में जाना चाहिए। लेकिन सामान्य रूप से साफा आदि पहनकर परमात्मा के दरबार में जा सकते हैं।

शंका– पूजा के लिए धोती-दुपट्टे का ही विधान क्यों है?

समाधान– सीले हुए वस्त्र पसीना आदि आने से दुर्गंधयुक्त हो सकते हैं जिससे आशातना लगती है। सीले हुए वस्त्र का अर्थ है टुकड़ों को जोड़ना जबकि परमात्म पूजा के लिए अखंड वस्त्रों का विधान है क्योंकि हम परमात्मा के समान पूर्ण एवं अखण्ड होना चाहते हैं उत्तरासंग धारण करना श्रावकत्व एवं विनय गुण का सूचक है। इसके द्वारा जीव रक्षार्थ प्रमार्जना भी की जा सकती है। इसी के साथ बिना सिले वस्त्र में नाप (Size) आदि की भी समस्या नहीं रहती।

सीले हुए वस्त्र पहनने से किसी भी प्रकार की ड्रेस पूजा के लिए प्रचलन में आ सकती है। धोती दुपट्टा पहनने पर इन सब दोषों से सहज रक्षा हो जाता है अत: पूजा के लिए शास्त्रों में धोती दुपट्टा का ही विधान है।

शंका– जिन्हें धोती पहननी नहीं आती हो उन्हें यदि कुर्ता-पायजामा की छूट दी जाए तो कोई दोष लगता है?

समाधान– पूजा शुरू करवाने की अपेक्षा कुर्ता पायजामा आदि की छूट देना अपवाद मार्ग है। परंतु वहाँ यह सावधानी रखना आवश्यक है कि उसकी देखा-देखी अन्य व्यक्ति कुर्त्ता आदि पहनकर पूजा करना प्रारंभ न कर दें। ऐसा होने पर अनवस्था दोष का प्रसंग आएगा। धोती के स्थान पर पायजामा एवं कुर्ते के स्थान पर उत्तरासंग पहनना चाहिए और धीरे-धीरे धोती पहनना शुरू कर देना चाहिए।

●

अध्याय-9

अंजनशलाका प्रतिष्ठा में बढ़ते आयोजन कितने प्रासंगिक?

शंका– किन प्रतिमाओं का अंजन विधान हो सकता है?

समाधान– अतीत, वर्तमान या भविष्य में जो आत्माएँ केवलज्ञान प्राप्त कर चुकी हैं या करने वाली हैं उनकी अंजनशलाका हो सकती है। जैसे कि शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा एवं गिरनार मंडन श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा या भरत चक्रवर्ती द्वारा स्थापित 24 तीर्थंकर की प्रतिमाओं का पूजन उनके केवलज्ञान प्राप्ति से पूर्व का उदाहरण है। इनका पूजन आदि भाव निक्षेप की अपेक्षा से किया जाता है। अत: भावी तीर्थंकरों का अंजन एवं पूजन शास्त्र सम्मत है।

शंका– प्रतिमा का निर्माण होने के कितने दिन बाद अंजनशलाका हो जानी चाहिए।

समाधान– प्रतिष्ठा षोडशक प्रकरण, दर्शनशुद्धि प्रकरण, धर्मसंग्रह आदि ग्रन्थों के अनुसार प्रतिमा का निर्माण होने के बाद दस दिन के अन्तराल में उसका अंजन विधान कर देना चाहिए। अन्यथा उसमें दुष्ट देवों का वास हो सकता है।

शंका– अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा के स्थान अशुचि रहित क्यों होने चाहिए?

समाधान– अंजनशलाका आदि शुभ अनुष्ठान अशुचि रहित स्थानों में करने का समर्थन प्राय: सभी आचार्य करते हैं। यहाँ अशुचि रहित स्थान का तात्पर्य प्रतिष्ठा क्षेत्र के चारों दिशाओं की सौ-सौ हाथ तक की भूमि को गन्दगी आदि से रहित करना है। इसका कारण यह है कि अशुद्ध स्थानों में देवी-देवताओं का आगमन नहीं होता और ऐसे अनुष्ठानों में देवी-देवताओं की उपस्थिति अनिवार्य है अत: स्थान शुद्धि आवश्यक है।

शंका– फले-चुंदडी की राशि का उपयोग कर्मचारियों के वेतन भुगतान हेतु कर सकते हैं?

समाधान– फले चुंदडी की राशि का उपयोग सात क्षेत्रों के अतिरिक्त, जीव दया, अनुकम्पा दान,भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त मानव सहायता के कार्यों में कर सकते हैं। इस राशि का इस्तेमाल निःस्वार्थ भाव से दान आदि के निमित्त करना चाहिए। किसी से काम करवाकर उसके मेहनताने के रूप में यह राशि देने पर अदत्तादान एवं अंतराय का दोष लगता है।

शंका– प्रतिष्ठा और अंजनशलाका में क्या अंतर है?

समाधान– प्रतिष्ठा शब्द का मूल अर्थ है प्रतिमा की अंजन विधि करके उसमें प्रभु के गुणों को स्थापित करना। भगवान को विराजमान करना यह बिम्ब प्रवेश कहा जाता है। वर्तमान में बिम्ब प्रवेश को प्रतिष्ठा एवं प्रतिष्ठा को अंजनशलाका कहा जाता है।

शंका– प्रतिष्ठा के पूर्व महोत्सव करना चाहिए या बाद में?

समाधान– आचार्य हरिभद्रसूरि एवं प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार प्रतिष्ठा के बाद आठ दिन तक महोत्सव करना चाहिए। वर्तमान में सभी जगह प्रतिष्ठा से पूर्व महोत्सव करवाने का चलन देखा जाता है।

शंका– विधिकारकों द्वारा प्रतिष्ठा करवाना उचित है या नहीं?

समाधान– प्रतिष्ठा कोई सामान्य विधान या परमात्मा को मात्र सीमेंट से चिपकाने की क्रिया नहीं है। यह जिन प्रतिमा में प्राणों एवं जिनत्व के भावों का आरोपण है। प्रतिष्ठाचार्य के भावों के आधार पर ही प्रतिष्ठा की श्रेष्ठता एवं सफलता निर्भर करती है। इसीलिए शास्त्रों में यह विधान करवाने का अधिकार आचार्य एवं तद्योग्य मुनियों को ही है।

ऐसे स्थान जहाँ पर मुनि भगवंतों का आना-जाना संभव नहीं हो वहाँ के मन्दिरों के लिए आचार्यों की निश्रा में अंजनशलाका करवा देनी चाहिए। फिर आचार सम्पन्न श्रावक द्वारा अट्ठम आदि तप पूर्वक एवं आचार्य आदि की अभिमंत्रित वासक्षेप से प्रतिष्ठा करवाई जा सकती है। यह एक अपवाद मार्ग है। वर्तमान में विधिकारकों का बढ़ता महत्त्व अवश्य विचारणीय है।

शंका– प्रतिष्ठा महोत्सवों में बढ़ते आडम्बर एवं पत्र-पत्रिकाओं का विराट कलेवर कितना समुचित है?

समाधान— वर्तमान में पत्र-पत्रिकाओं का कलेवर पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया है। पत्र-पत्रिकाएँ यह क्रियानुष्ठानों की सूचक एवं आमंत्रक है। श्री संघ का गौरव एवं गरिमा बनी रहे ऐसी पत्रिका छपवाने में कोई दोष नहीं है परन्तु वर्तमान में बढ़ रहा फोटो आदि का प्रचलन अवश्य विचारणीय है। इसी प्रकार प्रतिष्ठा महोत्सवों का भव्य आयोजन करने के चक्कर में कई बार जिनाज्ञा के विरुद्ध कार्य भी किए जाते हैं जैसे कि रात्रि में भोजन की भट्टियों का चलना, नृत्य, जादू आदि दिखाना। भोजन और प्रतिष्ठा चढ़ावों के आधार पर प्रतिष्ठा की सफलता का निर्णय करना एक गलत परम्परा है।

●

अध्याय-10

जीव दया की राशि का उपयोग कब और कैसे?

शंका– जीव दया की टीप का पैसा देरी से आए तो दोष का भागी कौन?

समाधान– किसी भी बोली, उजवणी, चढ़ावें या टीप का पैसा श्रावक को तुरंत जमा करवा देना चाहिए। उसमें भी जीव दया का पैसा श्रावकों को तुरंत जमा करवा देना चाहिए अन्यथा लिखवाने वाले को मूक जीवों की दया में अंतराय का दोष लगता है। ट्रस्टी गणों को भी उस राशि को सुयोग्य पांजरापोल आदि में भेज देना चाहिए। पुराना पैसा आने पर यदि देव द्रव्य की राशि हवाला (जमा-उधार-एंट्री) आदि द्वारा भेजी जाए तो देवद्रव्य भक्षण का दोष लगता है। देरी से भरने पर मन्दिर को ब्याज का घाटा होता है इसका दोष भी श्रावकों को ही लगता है। अत: बोली-टीप आदि का पैसा तुरंत जमा करवा देना चाहिए और यदि कारण विशेष से देरी हो जाए तो उतने दिन का ब्याज भी साथ देना चाहिए।

शंका– जीव दया की राशि का उपयोग मानव सेवा या अनुकम्पा में कर सकते हैं? मनुष्य भी तो जीव है?

समाधान– जीव दया के चंदे में 'जीव' शब्द का तात्पर्य मनुष्य के अलावा अन्य सभी त्रस जीवों से है अर्थात पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों से है। अत: इसे मानव सेवा के किसी भी कार्य में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य इन सभी जीवों से अधिक शक्तिशाली तथा स्वयं के भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम है। अत: मनुष्य के लिए इस राशि का प्रयोग करना अमानवीय है। मानव सहायता के लिए अनुकम्पा का फंड इकट्ठा करना चाहिए। आवश्यकता होने पर अनुकम्पा का फंड जीव दया में जा सकता है।

शंका– जीव दया की राशि का समुचित उपयोग न होता हो और अनुकम्पा के क्षेत्र में आवश्यकता हो तो जीव दया के स्थान पर अनुकम्पा का चंदा इकट्ठा कर सकते हैं?

समाधान– यदि जीव दया की राशि का उपयोग योग्य स्थान पर नहीं होता हो तो तद्हेतु प्रेरणा एवं प्रयत्न करना चाहिए। अनुकम्पा की राशि एकत्रित इकट्ठा अवश्य करें परन्तु उसके निमित्त जीवदया का फंड बंद करवाना उचित नहीं है। पूजन, महापूजन आदि में भी जीव दया के टीप की छूट है अनुकम्पा की नहीं। अत: इसकी प्राथमिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

शंका– जीव दया की राशि बैंकों में जमा करके रख सकते हैं?

समाधान– जीव दया की राशि बैंकों में ब्याज हेतु पड़ी रहे तो संचालकों के भीषण पाप का उपार्जन होता है। बैंकों में रखी गई राशि जीव हिंसा के कार्यों में भी प्रयुक्त की जाती है तथा जीवों के दाना-पानी-रक्षा आदि की अंतराय भी लगती है। इसके परिणामस्वरूप अल्प आयुष्य, इन्द्रिय हानि, गंभीर रोग, दुर्गति, बोधिदुर्लभता आदि फल भुगतने पड़ते हैं। वर्तमान में बाजार के आर्थिक उतार-चढ़ाव को देखते हुए लगता है कि राशि का तुरंत उपयोग अधिक लाभकारी है। ब्याज में राशि जितनी नहीं बढ़ती उससे अधिक महंगाई बढ़ जाती है तथा वृद्धि के स्थान पर हानि ही होती है। अत: बैंक में ब्याज आदि पर यह राशि नहीं रखनी चाहिए।

शंका– जीव दया की राशि अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त हो सकती है?

समाधान– जीव दया सम्बन्धी एकत्रित राशि का प्रयोग मात्र जीव दया में ही हो सकता है। यह सामान्य कोटि का द्रव्य है अत: ऊपर के सातों क्षेत्र अथवा किसी भी धार्मिक क्षेत्र एवं अनुकंपा क्षेत्र में इसका विनियोग नहीं कर सकते। इस खाते का द्रव्य मनुष्य को छोड़कर सभी तिर्यंच पशु-पक्षी जानवर की द्रव्य दया एवं भाव दया हेतु शास्त्रमर्यादानुसार प्रयोग कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर अनुकंपा की राशि जीव दया हेतु प्रयुक्त की जा सकती है।

●

अध्याय-11

देवी-देवताओं की उपासना के मुख्य घटक

शंका– अनिच्छापूर्वक या लोक व्यवहार में हनुमान, साई बाबा आदि के मन्दिर जाने से भी मिथ्यात्व का पोषण होता है?

समाधान– यदि हम पाक्षिक या सांवत्सरिक अतिचारों का चिंतन करें तो सम्यक्त्व के पाँच अतिचारों का जब वर्णन आता है तो उसमें मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा या मिथ्यादृष्टि के परिचय को तथा दाक्षिण्यता से उनके धर्म को मानना भी सम्यक्त्व को दूषित करने वाला कहा गया है। एक बार लगने वाले अतिचारों की उपेक्षा करने से वह हमारी प्रवृत्ति ही बन जाती है और फिर मूल से ही सम्यक्त्व का नाश हो जाता है।

दाक्षिण्यतावश भी ऐसे मंदिरों में जाने से अन्य लोगों को मिथ्यात्व समर्थन का अवसर प्राप्त होता है। अतः दर्शनार्थ या भ्रमणार्थ भी ऐसे मंदिरों एवं तीर्थों में नहीं जाना एवं विवेक पूर्वक ऐसी प्रवृत्तियों से दूर रहना ही आत्मार्थी के लिए हितकर है।

शंका– यदि मिथ्यात्वी देवी-देवताओं के मंदिर जाने से भी सम्यक्त्व दूषित होता है तो राजा कुमारपाल, वस्तुपाल,तेजपाल आदि अनेक जिनधर्मानुयायियों द्वारा अन्य मतावलंबियों के मंदिर आदि कैसे बनवाए गए? उनका सम्यक्त्व इससे दूषित नहीं हुआ?

समाधान– यह पहले भी कह चुके हैं कि प्रत्येक क्रिया परिस्थिति सापेक्ष की जाती है। मिथ्यात्वी देवी-देवताओं के मंदिर में भक्ति-श्रद्धा अथवा दाक्षिण्यता वश जाने से हमारे भीतर कहीं न कहीं उनके प्रति पूज्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं। जो स्वयं संसार के चक्रव्यूह में फसे हैं वे किसी अन्य को मुक्ति का मार्ग कैसे दिखा सकते हैं अतः हमारी आत्मा के पतन एवं संसाराभिमुखी होने की संभावना बढ़ जाती है।

राजा कुमारपाल आदि अपनी परम्परा के प्रति पूर्ण समर्पित एवं नियम

पालन में दृढ़ थे। परन्तु वे धर्मानुयायी होने के साथ राज्यशासक भी थे। ऐसी स्थिति में निरपेक्ष दृष्टि से राज्यवासियों के अपने-अपने धर्म वर्धन में सहायक बनना उनका कर्त्तव्य था। दूसरी बात उस समय में विरोधी परम्पराओं के द्वारा जैन मंदिरों को खंडित करने आदि का भय सदा रहता था। ऐसे में स्वधर्म की रक्षा एवं उन्नति में बाधा न आए इसलिए अन्य परम्परा वालों को शांत एवं संतुष्ट रखना आवश्यक था। अत: देश-काल-परिस्थिति के अनुसार कार्य करना मिथ्यात्व का पोषण नहीं है।

शंका– श्री घंटाकर्ण महावीर सम्यग्दृष्टि देव है ऐसी प्रचलित मान्यता है परंतु कहीं-कहीं उन्हें मिथ्यादृष्टि भी माना है? सत्यता क्या है?

समाधान– श्री घंटाकर्ण यह मिथ्यादृष्टि देव है। इसका समर्थन करते हुए शास्त्रों में विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं।

जैन परम्परा का इतिहास, भाग-3, पृ. 58-86 में निम्न वर्णन प्राप्त होता है–

पसिणाणसिणं सुमिणे विज्जा सिट्ठ करेइ अन्नस्स।
अहवा आइंखिणिआ घंटिमसिट्ठ परिकहेइ।।1312।।

वृत्ति– यत्स्वप्रेऽवतीर्णया विद्यया विद्याधिष्टात्रया देवतया शिष्टं कथितं सद् अन्यस्मै पृच्छकाय कथयति। अथवा 'आइंखणिआ' डोम्बी तस्या: कुलदैवतंघण्टिकयक्षो नाम स्पृष्ट: सन् कर्णे कयायति साऽत्र तेन शिष्टं कथितं सद् अन्यस्मै पृच्छकाय शुभाऽशुभाय यत् परिकथयति एवं प्रश्न-प्रश्न:।।1312।। (बृहत् कल्पसूत्र, भा. 25, पृ. 403, 404)

गीतार्थ जैनाचार्यों द्वारा घंटाकर्ण वीर के अजैन देव होने के निम्न प्रमाण दिए गए हैं–

- अभिधान चिंतामणि में आचार्य हेमचन्द्र देवकांड में वर्णित जैन देवों में घंटाकर्ण का नाम उल्लेखित नहीं किया है अपितु देवकांड में नंदीश शब्द की व्याख्या में एक उद्धरण श्लोक दिया है। पंडित व्याडि ने महादेव के गणों के जो नाम बताए हैं उसमें कर्ण अंत वाले अनेक नाम हैं। आचार्य श्री ने उसी में से एक श्लोक उद्धृत किया है।

गोपालो ग्रामणीमालु (मायु)र्घण्टाकर्णकरन्धमौ कार्य

(अभिधान चिंतामणि कोष, देवकांड श्लो. 124 की व्याख्या, पं.

केशवकृत कल्पद्रुम कोष, जैन सत्य प्र.क. 61)

गोपाल का अर्थ है पाँच इन्द्रिय विषय के पोषकणी ग्रामा का अर्थ मुखिया और पाँच इन्द्रियों को तृप्त करने वाला होता है। इससे स्पष्ट है कि घंटाकर्ण समकिती या धर्म पोषक देव नहीं है।

- खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री जयसागर गणि के अनुसार बड़ी शांति,वसुधारा और घंटाकर्ण ये बौद्धों के हैं ऐसा गीतार्थ मानते हैं। (उद्धृत-जैन सत्य. प्र. क्र. 61)।
- पूज्य कल्याणविजयजी गणिवर के अनुसार घंटाकर्ण जैन देव नहीं है (उद्धृत–जैनसत्य. प्र.क्र. 56, पृ.-5, अंक-8)।
- कल्याणकलिका में घंटाकर्ण की थाली बजाने की प्रक्रिया को निराधार और झूठी बताया है।
- आचार्य विजय लब्धिसूरि के अनुसार घंटाकर्ण वीर बौद्धों के देव है अत: उनके सम्यक्त्वी होने का प्रश्न ही नहीं रहता। (उद्धृत-कल्याण मासिक, वर्ष-13, अंक-1, पृ. 654)।

जैन शास्त्रों में रुद्र, भंडारी यक्ष, हासा, प्रहासा, सीकोतरी, घंटाकर्ण आदि के नाम प्रसंगोपेत उल्लेखित हैं। इससे वे समकिती देव के रूप में मान्य नहीं हो जाते।

- जैन साप्ताहिक में आए एक लेख के अनुसार श्वेताम्बर जैन यतिओं ने चौथी सदी में जैन-जैनेतर मंत्र विधानों में से कुछेक मंत्र विधान लिए थे उसी में से बौद्ध धर्म या शैव धर्म से घंटाकर्ण मंत्र लिया होगा।

दिगंबर जैन भट्टारक नवीन जिनालय बनाते समय पहले अमुक देवों की आराधना कर स्वप्न प्राप्त करते थे। बहुत समय बीतने के बाद यह स्थान घंटाकर्ण ने लिया होगा। उसके बाद श्वेताम्बर यतियों ने भी ऋषिमंडल के साथ घंटाकर्ण की आम्नाय ली ऐसा ज्ञात होता है।

संभव है कि इसी प्रकार एक-दूसरे के माध्यम से जैन परम्परा में भी जैन मंत्रवादिओं, दिगम्बर भट्टारकों, लोकगच्छ के यतिओं, स्थानकवासी ऋषियों एवं जैन मुनियों ने घंटाकर्ण का मंत्र लिया होगा और इसी प्रकार वह जैन विधि-विधानों में सम्मिलित हुआ होगा। वे हरिजनों के कामना पूरक देव हैं। (घंटाकर्ण की विशेष चर्चा के लिए 7-4-1939 तथा 17-4-1940 के साप्ताहिक जैन

देखिए)।

• ऐतिहासिक दृष्टि से कहा जाए तो विविध राज धर्मों का शासन अथवा उस समय में जैन धर्म के स्थानों में पाँच पीर, कब्र मस्जिद के ढाँचे आदि का समावेश हो चुका होगा।

कुछेक आचार्यों का मत है कि बावन वीरों में घंटाकर्ण का नाम आता है एवं शांति स्नात्र में घंटाकर्ण का थाल निकालने की परम्परा है अत: घंटाकर्ण सम्यक्त्वी देव होने चाहिए। उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के मतानुसार घंटाकर्ण देव का उद्भव खरतरगच्छ परम्परा से ही हुआ है तथा आचार्य बुद्धिसागरजी को घंटाकर्ण का प्रत्यक्ष मंत्र किसी खरतरगच्छ के आचार्य द्वारा ही प्रदान किया गया था। अत: उनकी गणना परम्परानुसार सम्यक्त्वी देवों में होती है। इस विषय में यथार्थ तथ्य अनुसंधान पूर्वक गीतार्थ गुरुओं द्वारा जानने योग्य है।

शंका– जैन धर्म वीतराग उपासक है अत: राग-द्वेष युक्त देवी-देवताओं की उपासना क्या शास्त्रोक्त है? तथा इनकी उपासना कब प्रचलन में आई?

समाधान– जैन आगमों के अनुसार धर्म का प्रथम सोपान सम्यगदर्शन है। वीतराग देव के अतिरिक्त राग-द्वेष युक्त किसी भी देवी-देवता की उपासना का निषेध करते हुए उसे मिथ्यात्व माना है। परमात्म के सेवक रूप एवं शासन रक्षक कुछ सम्यग्दृष्टि देवी-देवताओं को साधर्मिक बंधु के रूप में अवश्यमेव स्वीकार किया गया है। जिनशासन में देवी-देवताओं की मान्यता विशेष रूप से हिन्दू धर्म के भक्ति आंदोलन का प्रभाव प्रतीत होता है। प्राचीन काल में गीतार्थ आचार्यों ने लाखों अजैनों को प्रतिबोधित कर जैन बनाया जो मूल रूप से हिन्दू, ब्राह्मण आदि परम्पराओं से होते थे। इसी के चलते शनै: शनै: देवी-देवताओं की पूजा का समावेश होता गया।

जैन धर्म में पुरुषार्थ और कर्म को प्रधानता दी गई है। एक सच्चा श्रावक कभी भी याचना नहीं करता। गौतम स्वामी ने एकदा भगवान महावीर से पूछा–

• भगवन! देवी-देवताओं की पूजा अर्चना सफल होती है अथवा निष्फल? ये लोग मनुष्य की सहायता क्यों करते हैं?

भगवान– गौतम! इस संसार में रागी-द्वेषी देव भी हैं। वे ही मनुष्य की पूजा अर्चना से प्रसन्न होते हैं तथा अवज्ञा-निंदा आदि से कुपित होते हैं। वाणव्यंतर,

भवनवासी, ज्योतिषी एवं कल्पों में उत्पन्न देव राग-द्वेष युक्त होते हैं। पूर्व जन्मों के मोहवश ये मनुष्य पर अकारण भी उपकार या अपकार करते हैं।

गौतम– तब फिर अच्छे कर्म करने का क्या महत्त्व? लोग पापकर्म करके भी देव-देवियों से सुफल प्राप्त कर लेंगे?

भगवान– गौतम! ऐसा नहीं है ये देव भी मनुष्य के पाप को पुण्य रूप या पुण्य को पाप रूप में नहीं बदल सकते। जब प्राणी का पुण्योदय होता है तभी ये सहायक होते हैं, पापोदय में पीड़ाकारक बन जाते हैं। पुण्यहीन एवं पापी कितनी भी इनकी भक्ति करे तो भी कोई सुफल प्राप्त नहीं हो सकता। इनका महत्त्व एक बलवान मित्र या शत्रु के जितना ही समझना चाहिए। मनुष्य को इन पर निर्भर न रहकर स्वावलम्बी जीवन का आश्रय लेना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन से देवी-देवताओं की पूजा उपासना में जैन श्रावक की मनोवृत्ति का सुन्दर स्पष्टीकरण हो जाता है। यह जैन सिद्धान्तों के अनुरूप भी है। अत: जैन धर्म में सम्यक्त्वी देवी-देवताओं का भी पूजन साधर्मिक के रूप में बिना किसी इच्छा-कामना-याचना के करना चहिए।

शंका– अधिष्ठायक देवी-देवताओं के पुराने वस्त्रों से छोटे झंडे या वासक्षेप आदि के बटुए बना सकते हैं?

समाधान– उन वस्त्रों की उचित राशि भंडार में डालकर छोटे झंडे बनाए जा सकते हैं। पर बटुए आदि बनाना उचित नहीं है क्योंकि उतारे हुए वस्त्रों से बनाए गए बटवे आदि में पूजन सामग्री रखना अनुचित है।

शंका– देवी-देवताओं के चढ़ावे के द्वारा प्राप्त राशि से धर्मशाला आदि का निर्माण हो सकता है?

समाधान– देवी-देवताओं से उपाश्रय, धर्मशाला आदि का निर्माण हो सकता है किन्तु विवाह आदि सामाजिक कार्यों में उसका उपयोग नहीं हो सकता।

शंका– देवी-देवताओं से सम्बन्धित बोलियों की राशि किस खाते में जाती है?

समाधान– देवी-देवताओं से सम्बन्धित बोलियों की राशि साधारण खाते में जाती है। इसका उपयोग सातों क्षेत्रों में हो सकता है।

शंका– सम्यक्त्वी देवी-देवताओं के आगे अक्षत का साथिया बनाना चाहिए या त्रिशूल?

समाधान– आचार्य जयघोषसूरिजी म.सा. के अनुसार मात्र साधर्मिक रूप में उनकी भक्ति करनी चाहिए। त्रिशूल, साथिया आदि कुछ नहीं बनाना चाहिए। भैंरू जी आदि अधिष्ठायक देवों के आगे त्रिशूल बनाने की परम्परा देखी जाती है।

शंका– पार्श्वनाथ भगवान युक्त पद्मावती की मूर्ति के भंडार का द्रव्य साधारण खाते में जाएगा या देव द्रव्य में?

समाधान– किसी पुस्तक में परमात्मा का फोटो होने मात्र से उस पुस्तक के पूजा की राशि देवद्रव्य में नहीं जाती। कल्पसूत्र आदि में परमात्मा के फोटो के दर्शन करने मात्र से वह राशि देवद्रव्य में नहीं जाती ज्ञानद्रव्य में ही जाती है। प्रभु मूर्ति से युक्त अधिष्ठायक देवी-देवताओं की प्रतिमा को देव बुद्धि से अर्पित किया गया द्रव्य देव द्रव्य नहीं हो जाता वह साधारण द्रव्य ही कहलाता है। इसका प्रयोग प्रभावना एवं साधर्मिक वात्सल्य के अतिरिक्त सातों क्षेत्रों में कहीं भी हो सकता है।

शंका– समकितधारी जैन अनुयायियों को मिथ्यात्वी देवी-देवताओं की उपासना से लाभ एवं पुण्य मिलता है?

समाधान– जैनों को मिथ्यात्वी देवी-देवताओं की उपासना नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे सम्यक्त्व मलिन हो जाता है। यदि अपरिहार्य रूप से कहीं व्यावहारिक स्तर पर करनी पड़े तो उससे कार्य सिद्धि अवश्य होती है। जैसे– चक्रवर्ती षट्खंडविजय के समय विविध स्थानों पर अट्ठम आदि तप करके अपेक्षित देवी-देवताओं की साधना करते हैं। वह क्षन्तव्य व्यवहार कहलाता है। यह प्रवृत्ति धर्म कार्य में न बाधक बनती है और न ही धर्म कार्य में गिनी जाती है। सामान्य निमित्तों में जैनों को उनकी साधना नहीं करनी चाहिए।

शंका– नवग्रह की उपासना जैन पद्धति से कैसे की जाए? तथा अन्य तरीके से करने में क्या दोष है?

समाधान– जैन धर्म मात्र वीतराग परमात्मा की आराधना को ही मुख्यता देता है। नवग्रह आदि की उपासना हेतु भी मुख्य रूप से तीर्थंकरों एवं पंच परमेष्ठी का ही जाप करना चाहिए। सत्वहीन आपत्तिग्रस्त लोगों के लिए इस

प्रकार की उपासना परमात्म भक्ति में बढ़ने का साधन बनती है। इसी के साथ ग्रहों की अनुकूलता एवं आपत्ति निवारण आदि भी सहजतया हो जाती है। परन्तु धर्मतत्त्व का उपयोग इसी हेतु बार-बार करना अनुचित है। व्यवहार जगत में इनकी आराधना से कम से कम मिथ्यात्व पुष्ट नहीं होता।

जैनेतर पद्धति से नवग्रह उपासना करने पर मिथ्यात्व पुष्ट होता है। सम्यक्त्व के प्रति दृढ़ता कमजोर होती है। तथा सम्यक्त्व मलिन होने से अनंत संसार की वृद्धि होती है।

शंका– अधिष्ठायक देवों की पूजा किस प्रकार करनी चाहिए?

समाधान– अधिष्ठायक देवों की पूजा साधर्मिक के रूप में तिलक, वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला के द्वारा करनी चाहिए। अन्य रूप में एवं अन्य देवी-देवताओं की पूजा करने से मिथ्यात्व प्रचार की संभावना रहती है।

शंका– मंदिरों के परिसर में देवी-देवताओं की देहरियाँ बनवाना, आरती करना, सुखड़ी चढ़ाना, रात्रि भक्ति आदि करना कितना उचित है?

समाधान– वर्तमान में मंदिर के परिसर में बढ़ रही देवी-देवताओं की स्थापना अनुचित है। मणिभद्र देव का स्थान उपाश्रय में था। जब प्रत्येक परमात्मा के आगे अलग-अलग भंडार नहीं रखे जाते तब देवी-देवताओं के आगे क्या आवश्यकता? देवी-देवता परमात्मा के सेवक होते हैं और उन्हें परमात्मा के सेवक के रूप में ही स्थान देना चाहिए। वे परमात्म भक्ति से ही आनंदित हो जाते हैं। परमात्मा के भंडार को भरने से ही वे संतुष्ट हो जाते हैं। देवी-देवताओं के अनुष्ठानों से परमात्मा की महिमा गौण होती है। अरिहंत परमात्मा से कुछ माँगते नहीं और वे वीतराग होने से कुछ देते नहीं ऐसी मिथ्या एकान्त धारणा से ग्रसित लोग इन सबके प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। साधारण खाते की आवक बढ़ाने के लिए ऐसे अनुष्ठानों को बढ़ावा देना सर्वथा अनुचित है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	सत्य की खोज	मुनि जयानंद विजयजी	श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल, (राजस्थान)	
2.	समाधान यात्रा	आचार्य जयघोषसूरि संपा. मुनि सत्यकांत विजयजी	दिव्यदर्शन ट्रस्ट, 39 कलिकुंड सोसायटी, मफलीपुर चार रास्ता, धोलका,	वि.सं. 2064
3.	प्रतिमापूजन	मुनि श्री भद्रंकर विजयजी संपा.मुनि रत्नसेनविजय	दिव्यसंदेश प्रकाशन, 4-मेरी विला बिल्डिंग, पहला माला, भांजरेकर वाडी, मथुरादास वसनजी रोड, अंधेरी (पूर्व), मुम्बई	
4.	जिन मंदिर व्यवस्था	मुनि पीयूष सागर	श्री जैन श्वेताम्बर कैवल्यधाम तीर्थ, कुम्हारी, दुर्ग, (36 गढ़)	
5.	जैन धर्म और जिन प्रतिमा पूजन रहस्य	पं. हीरालाल दुग्गड	जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मन्दिर, शाहदरा, दिल्ली	1984
6.	सन्मार्ग प्रश्नोत्तर (भा.1-4)	आ. कीर्तियशसूरि	सन्मार्ग प्रकाशन, जैन आराधना भवन, रीलिफ रोड, अहमदाबाद	वि.सं. 2053
7.	श्री जिनपूजा विधि संग्रह	पं.कल्याणविजय गणि संपा. शोभाचन्द्र भारिल्ल	श्री कल्याणविजय शास्त्र संग्रह समिति, जालोर, राजस्थान	1966

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
8.	धार्मिक वहीवट विधान	आ. कीर्तियशसूरि	सन्मार्ग प्रकाशन, जैन आराधना भवन,रीलीफ रोड अहमदाबाद	
9.	देवद्रव्य मीमांसा	उपा. मणिप्रभसागर		
10.	जहाज मंदिर(विशेषांक)	उपा. मणिप्रभसागर		2007
11.	जैन आगम (त्रैमासिक पत्रिका)			
12.	पूजन कैसे करूँ?	गणि हेमचन्द्र सागर	श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान, छाणी, बड़ौदा	2048
13.	तत्त्वज्ञान प्रवेशिका	प्रवर्तिनी सज्जन श्रीजी	श्री ऋषभदेव मंदिर ट्रस्ट, सदर बाजार, रायपुर, (36गढ़)	2001
14.	मंगलं जिनशासनम्	आ. विजयमित्रानंद सूरि संपा. मुनि भव्यदर्शन विजयजी	श्री पद्मविजयजी गणिवर जैन ग्रंथमाला ट्रस्ट, एच.ए. मार्केट, तीसरा माला, कपासिया बाजार, अहमदाबाद	वि.सं. 2053
15.	सन्मार्ग(पाक्षिक पत्रिका)	संपा.आ.कीर्तियशसूरि	सन्मार्ग प्रकाशन, जैन आराधना भवन, पाछीयानी पोल, रीलीफ रोड, अहमदाबाद	2005

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00

22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

सज्जन पथ के हीरे मोती

- श्री संघ का मंदिर होने पर गृह मंदिर बनवाना कर्त्तव्य या आशातना?
- साधु-साध्वी पूजा क्यों नहीं करते?
- जीवदया और अनुकम्पा में क्या अंतर है?
- वर्तमान में बढ़ रही आंगी परम्परा उचित या अनुचित?
- पाषाण प्रतिमा की पूजा फलदायी कैसे?
- पैकेट बंद दूध से प्रक्षाल करना चाहिए या नहीं?
- अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व तिथि को पुष्प-फल आदि चढ़ाना या नहीं?
- पूजा आदि विधि-विधानों में सामूहिक क्रिया की प्रमुखता क्यों?
- पुजारियों पर बढ़ती निर्भरता से हानि अधिक या लाभ?
- घंटाकर्ण सम्यक्त्वी देव हैं या मिथ्यात्वी?
- अधिष्ठायक या क्षेत्रपाल देवों की स्थापना अन्य क्षेत्रों में प्रभावी कैसे?

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XXIII)